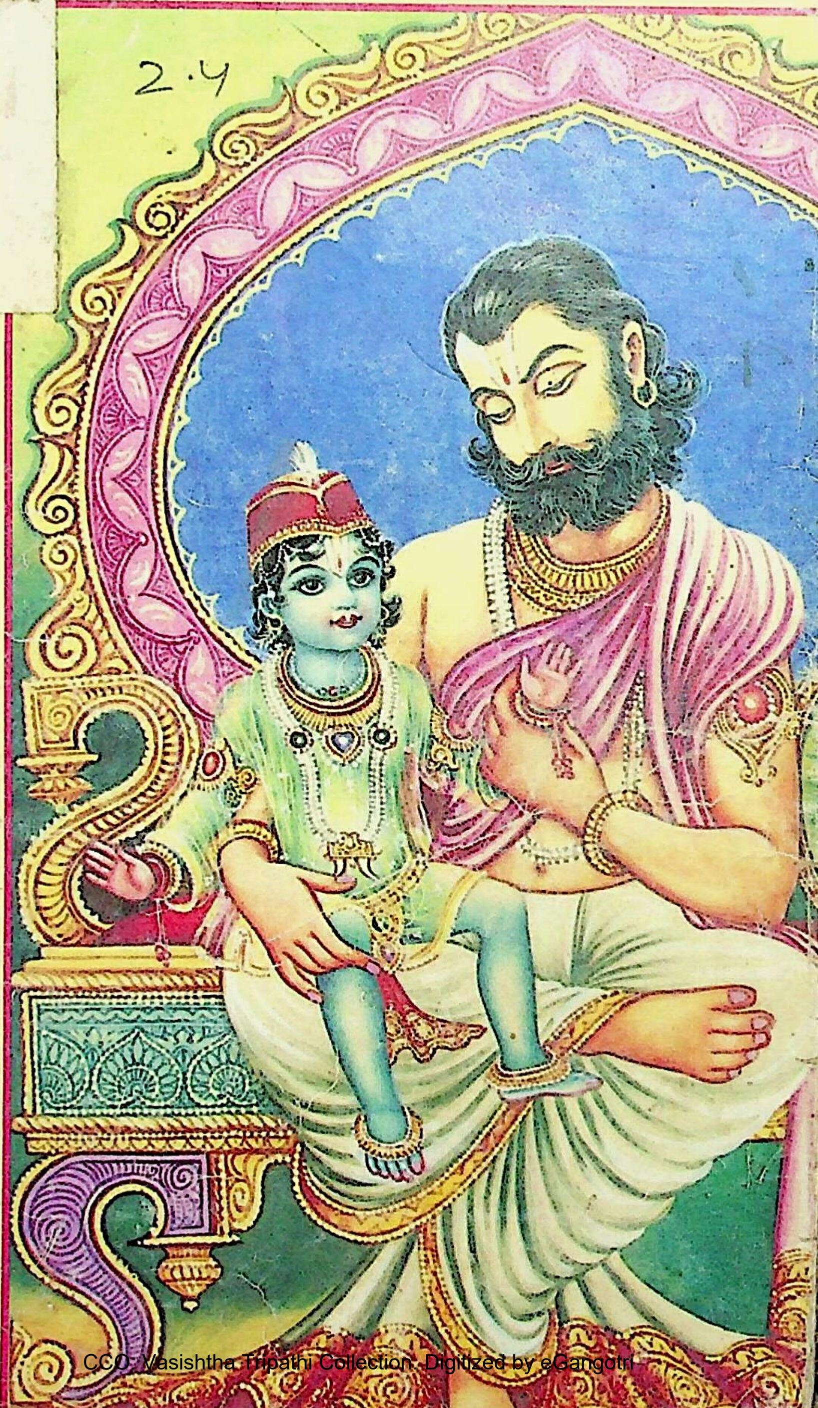
२

2.4



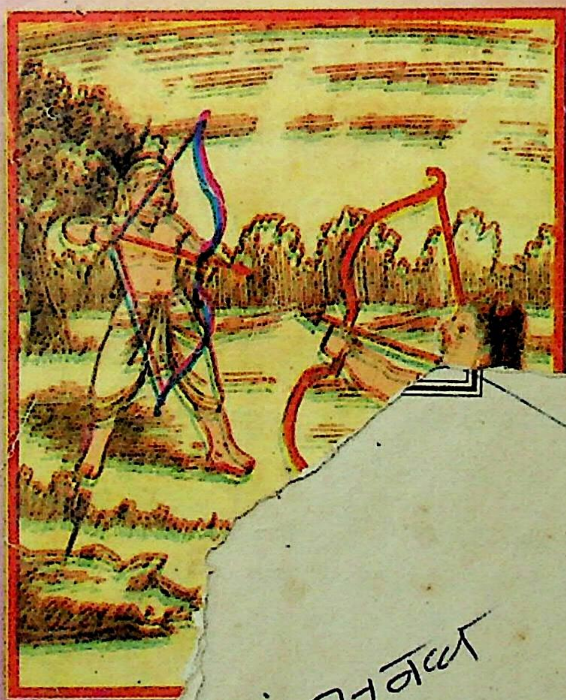


୨୧ ଟଙ୍କା

महाकवि-भारवि-प्रणीतम्

किरातार्जुनीयम्

(प्रथम सर्ग)



महाकविभारविप्रणीतम्

किरातार्जुनीयम्

(प्रथमः सर्गः)

इण्टरमीडिएट कक्षाओं के लिये संस्कृत की पाठ्यपुस्तक

(प्रथम प्रश्नपत्र)

सम्पादक
डॉ० शशांक चन्द्र
रीडर संस्कृत विभाग
सी० एम० पी० डिग्री कालेज
इलाहाबाद

सात पुस्तक
मॉडल

अनवर

गजट संख्या 9/171 दिनांक 3 जुलाई, 1999 के अनुसार वर्ष 2001 की इण्टरमीडिएट (कक्षा 11 व कक्षा 12) संस्कृत की परीक्षा के लिये निम्नलिखित पाठ्यपुस्तक माध्यमिक शिक्षा परिषद् उ० प्र० इलाहाबाद द्वारा निर्धारित की गई है।

	प्रथम प्रश्न पत्र	50 अंक
कादम्बरी	(विन्ध्याटवी वर्णन से पूर्व)	17 अंक
दशकुमारचरितम्	(अष्टम् उच्छ्वास)	
रघुवंशमहाकाव्यम्	(द्वितीय सर्ग)	17 अंक
किरातार्जुनीयम्	(प्रथम सर्ग)	
अभिज्ञानशाकुन्तलम्	(चतुर्थ अंक)	16 अंक
उत्तररामचरितम्	(षष्ठोऽङ्कः)	

	द्वितीय प्रश्न पत्र	50 अंक
[illegible]		9 अंक
		41 अंक

...र्म द्वारा प्रकाशित है।

मूल्य : 10.50

संस्करण : 2001

[illegible] 1994

माँ के चरणों में
समर्पित

विषयानुक्रम

———

आमुख

सभी काव्य रस प्रेमियों को यह ज्ञात ही है कि भारविकृत किरातार्जुनीयम् महाकाव्य का बृहत्त्रयी (नैषधीयचरितम्, शिशुपालवधम्, किरातार्जुनीयम्) के अन्तर्गत शीर्ष स्थान है। आचार्यों ने 'भारवेरर्थगौरवम्' कहकर भारवि के काव्य में अर्थगौरव का प्राधान्य स्थापित किया है। अर्थगौरव का तात्पर्य है—गागर में सागर भरना अर्थात् अत्यल्प शब्दों में प्रभूत अर्थ का समावेश। मल्लिनाथ सूरि ने भारवि की वाणी को 'नारिकेलफलसम्मित' तथा 'रसगर्भनिर्भरसार' कहा है अर्थात् ऊपर से नारियल के समान कठोर तथा अन्दर से रसपेशल। परन्तु इस रस का आस्वादन वही कर सकेगा जो इसे प्राप्त करने में सक्षम होगा।

यद्यपि 'किरातार्जुनीयम्' के प्रथम सर्ग के ऊपर अनेक यशस्वी विद्वानों के द्वारा व्याख्यायित पुस्तकें उपलब्ध हैं परन्तु प्रस्तुत प्रयास इण्टरमीडिएट में अध्ययनरत सुकुमारमति वाले छात्रों तथा स्नातक कक्षाओं में अध्ययनरत अनधिक परिपक्व मति वाले छात्रों की सुविधा को दृष्टि में रखकर किया गया है। इसीलिए प्रस्तुत पुस्तक में श्लोक का अन्वय, शब्दार्थ, हिन्दी अनुवाद, भावार्थ, संस्कृत व्याख्या, व्याकरण, अलङ्कारादि उन सभी चीजों का समावेश किया गया है, जिनकी आवश्यकता विद्यार्थियों को सरलता से समझने के लि[illegible] रहती है। पुस्तक के प्रारम्भ में ग्रन्थ, ग्रन्थकार एवं शैली का परिचय दिया ग[illegible] है। पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने के लिए, अन्त में, सूक्तियों की व्याख्य[illegible] तथा संस्कृत में लघु उत्तरीय प्रश्न भी दिये गये हैं।

पुस्तक की प्रस्तुति में मेरी धर्मपत्नी श्रीमती प्रेमलता, एम० ए०, बी० एड० तथा प्रिय मित्र श्री सत्यव्रत मिश्र जी का सहयोग एवं संबल मिला है।

पुस्तक के प्रकाशक एवं भारत एजेन्सीज़ के स्वत्वाधिकारी एवं श्री आलोक गुप्ता के प्रयासों से ही यह पुस्तक पाठकों के हाँथों में पहुंच सकी है। अतः उनको धन्यवाद।

पुस्तक प्रणयन अत्यल्पावधि में शीघ्रतापूर्वक सम्पन्न हुआ है। अतः इसमें कुछ त्रुटियाँ हो सकती हैं। विद्वज्जनों एवं अध्यापक बन्धुओं से अनुरोध है कि इसे सहन करने की कृपा करेंगे।

सौभाग्य-सदन
१९, एच, हैमिल्टन रोड,
जार्जटाउन, इलाहाबाद

विनयावनत
शशांक चन्द्र
इलाहाबाद

संस्कृत साहित्य के तीन सोपान

संस्कृत भाषा का साहित्य अति विशाल है तथा अनेक प्रकार की विविधताओं से युक्त है। सुरभारती के विशाल आँगन में जहाँ एक ओर रामायण तथा महाभारत जैसे ऐतिहासिक आर्ष-काव्य उपलब्ध होते हैं, वहीं दूसरी ओर महाकाव्य, खण्डकाव्य नाटक, गीति-काव्य, गद्य-साहित्य, आख्यान-साहित्य, चम्पू-काव्य जैसे ग्रन्थों की विपुल काव्य-सम्पत्ति प्राप्त होती है। वस्तुतः मनुष्य के जीवन के लिए उपयोगी कोई भी विषय संस्कृत साहित्य में अछूता नहीं रह गया है। ज्योतिष, आयुर्वेद, विज्ञान, स्थापत्य, संगीत, कला, आदि विषयों में कितने ही प्रसिद्ध तथा सर्वमान्य ग्रंथों की रचना संस्कृत भाषा में हुई है। अस्तु।

संस्कृत काव्य को तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है—(१) पूर्वकालिदास युग, (२) कालिदास युग (३) कालिदासोत्तर युग।

पूर्व कालिदास युग में रामायण, महाभारत, पाणिनिकृत अष्टाध्यायी, पातालविजय, जाम्बवती विजय ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। पतञ्जलि ने महाभाष्य में वाररूच-काव्य कंसवध, वलिवध, तथा वासवदत्ता, सुमनोत्तरा, भैमरथी आदि आख्यायिकाओं का उल्लेख किया है। इस युग में भाव पक्ष की प्रधानता है। भाषा अत्यन्त सरल है। भाषा या कला पक्ष गौण है।

कालिदास युग का नेतृत्व महाकवि कालिदास ने स्वयं किया है। इस युग में भाषा तथा भावों का समन्वय मिलता है। इस युग के कवि रस को ही काव्य की आत्मा मानते हैं। कालिदास स्वयं वैदर्भी रीति के कवि हैं। उनकी रचनाओं में अलंकारों का प्रयोग साधन के रूप में है, साध्य के रूप में नहीं है। उपमा के प्रयोग में कालिदास अद्वितीय हैं। कालिदास की शैली का अनुसरण आचार्य अश्वघोष, मातृचेट, कुमारदास इत्यादि बौद्ध कवियों ने किया है।

कालिदासोत्तर युग के पुरोधा कवि हैं—भारवि। इसी क्रम में माघ, भट्टि, आनन्दवर्धन इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है। ये अलंकार शैली के कवि हैं। इसलिए इस युग की रचनाओं में कालिदास जैसी विदग्धता तथा भावप्रवणता नहीं दिखाई देती है। इस युग के कवि पहले व्याकरण एवं अलंकारशास्त्र में पारंगत विद्वान हैं, बाद में कवि हैं। उक्तिवैचित्र्य ही काव्यसर्वस्व माना जाने लगा। पाण्डित्य प्रदर्शन एवं चमत्कारपूर्ण वर्णन ही इस युग के कवियों का उद्देश्य हो गया। इसीलिए काव्यगत विषय गौण होकर कला

प्रदर्शन प्रधान हो गया। यह स्थिति लगभग छः सौ साल रही। धीरे-धीरे १२वीं शती तक अलंकार शैली की काव्य रचनाओं के स्थान पर रसगर्भ निर्भर काव्यों की रचना मंखक, विल्हण, पण्डितराज जगन्नाथ इत्यादि कवियों ने की।

किरातार्जुनीयम्

भारविकृत 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य अति उच्चकोटि का महाकाव्य है। इसमें १८ सर्ग हैं तथा १०४० श्लोक हैं। संस्कृत के तीन महाकाव्यों भारवि प्रणीत किरातार्जुनीयम्, माघप्रणीत शिशुपालवधम् तथा श्रीहर्षप्रणीत नैषधीयचरितम् के समूह को वृहत्त्रयी नाम से उल्लिखित किया जाता है। इनमें भारविप्रणीत किरातार्जुनीयम् अन्यतम है।

नामकरण—

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में लिखा है—,'कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा नामास्य' अर्थात् महाकाव्य का नामकरण उसके नायक, कथानक, या कवि के नाम पर किया जाता है। नायक के नाम पर कालिदास-कृत रघुवंश महाकाव्य, कथानक के आधार पर कुमारसम्भवम् तथा कवि के नाम पर भट्टिकाव्य रचे गये।

'किरातार्जुनीयम्' का कथानक पाण्डुपुत्र अर्जुन से संबंधित है। इस महाकाव्य के सम्पूर्ण कथानक का केन्द्रबिन्दु अर्जुन द्वारा किरातवेषधारी शंकर से पाशुपत अस्त्र प्राप्त करना है। इस प्रकार किरातवेषधारी भगवान शंकर तथा अर्जुन के चरित्र से संबंधित होने के कारण इस ग्रन्थ का नाम किरातार्जुनीयम् पड़ा।

किरातश्च अर्जुनश्च किरातार्जुनौ (द्वन्द समास) तौ अधिकृत्य कृतं काव्यम् इति किरातार्जुनीयम्। महर्षि पाणिनि के अनुसार 'शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द इन्द्रजननादिभ्यछः' सूत्र से द्वन्द्वसमास के अर्थ में यहाँ छः प्रत्यय हुआ है। सूत्र का अर्थ है—शिशुक्रन्द, यमसभ, द्वन्दसमास तथा इन्द्रजनन आदि शब्दों में छः प्रत्यय वहाँ होता है जहाँ किसी ग्रन्थ की संज्ञा बनानी हो। अतः द्वन्द समास वाले शब्द किरातार्जुन में छः प्रत्यय लगा (किरातार्जुन + छः) छः प्रत्यय को 'आयनेयीनीयियः फढखछाधानानाम् प्रत्ययादीनां' सूत्र से ईय आदेश होकर ग्रन्थवाची शब्द होने से नपुंसकलिङ्ग में 'किरातार्जुनीयम्' बना।

———

महाकवि भारवि का जीवन परिचय

एकमात्र ग्रंथ किरातार्जुनीयम् से प्रसिद्धि की पराकाष्ठा को प्राप्त करने वाले महाकवि भारवि ने अपने बारे में स्वयं कुछ नहीं लिखा। 'अवन्तिसुन्दरीकथा' के रचयिता दण्डी अपने आपको भारवि का प्रपौत्र बताते हैं। दण्डी के अनुसार भारवि कौशिक नामक ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुए थे। इनके पूर्वज गुजरात के मूल निवासी थे। वहाँ से वे नासिक गये तथा अचलपुर नामक स्थान में निवास करने लगे थे। इसी कौसिक कुल में भारवि उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम नारायण स्वामी बताया जाता है। अवन्तिसुन्दरीकथा के आधार भारवि इनकी उपाधि थी। जबकि इनका मूल नाम दामोदर था। भारवि के पुत्र का नाम मनोरथ था। मनोरथ के चौथे पुत्र वीरदत्त तथा उनकी पत्नी गौरी से दण्डी उत्पन्न हुए थे।

यही दण्डी अवन्तिसुन्दरी कथा, काव्यादर्श एवं दशकुमारचरितम् के रचयिता हैं।

एक जनश्रुति के अनुसार, भारवि महाराज भोज के समकालिक तथा धारा नगरी के निवासी थे। इनके पिता का नाम श्रीधर तथा माता का नाम सुशीला बताया जाता है। इनकी पत्नी का नाम रसिकवती था। प्रारम्भ में, यह अति [illegible]त स्वभाव के थे। अतः पिता के द्वारा प्रायशः प्रताड़ित किये जाते थे, [illegible]ससे क्षुब्ध होकर इन्होंने अपने पिता का वध करने का निर्णय किया। परन्तु [illegible]ता के द्वारा माता से समक्ष की जा रही अपनी प्रशंसा सुनकर इन्हें अत्यधिक ग्लानि हुई। जिसके कारण वह पिता से दूर अपनी ससुराल में निवास करने लगे। यहीं पर, भारवि ने महाकाव्य की रचना का महान् कार्य प्रारम्भ किया।

एक रोचक अन्य किंवदन्ती भारवि के बारे में प्राप्त होती है। कहा जाता है कि भारवि और उसकी पत्नी धनाभाव के कारण दुःखी रहते थे। अतः धन मिलने की आशा से एक श्लोक का आधा भाग लिखकर अपनी पत्नी को यह कहकर दिया कि इसको किसी योग्य एवं गुणग्राही व्यक्ति को देकर धन ले आओ। भारवि की पत्नी ने उस आधे श्लोक को सेठ की पत्नी को देकर धन लाई। सेठ की पत्नी ने उस श्लोकार्ध को काष्ठपट्टिका पर अंकित करवाकर अपने शयनकक्ष में लगा लिया। व्यापार कें प्रसंग में विदेश गया हुआ सेठ १५ वर्षों बाद लौटा। सेठ जब यात्रा पर जा रहा था उस समय उसकी पत्नी गर्भवती थी। सेठ को यह ज्ञात नहीं था। सेठ के लौटने तक उसका बालक नवयुवक हो गया था तथा अपनी माता के शयन कक्ष में सो रहा था। पत्नी के

शयन कक्ष में सोये हुए नवयुवक को देखकर सेठ क्रोध से युक्त होकर तलवार से उसे मारने के लिए हाथ उठाया। उसी समय सेठ को काष्ठपट्टिका में अंकित श्लोकार्ध—'सहसा विदधीत न क्रियाम्' दिखाई पड़ा। मारने के लिए उठा हुआ हाथ रुक गया। पत्नी को जगाया। ज्ञात हुआ है कि सोया हुआ नवयुवक उसी का पुत्र है। इसी प्रकार की अन्य जनश्रुतियाँ भारवि के बारे में प्रचलित हैं। परन्तु उनकी प्रामाणिकता के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता।

समय

महाकवि भारवि ने भी संस्कृत के अन्य कवियों की भांति अपने समय के बारे में कुछ नहीं लिखा है। इनके समय के विषय में बहिरंग प्रमाणों से ही अनुमान लगाया जा सकता है। ऐहोल ग्राम स्थित जैनमन्दिर में पुलकेशिन द्वितीय के समय के शिलालेख (६३४ ई०), वामन एवं जयादित्य द्वारा रचित काशिकावृत्ति (६५० ई०), दक्षिण भारत में गुमरेड्डीपुर से प्राप्त एक दानपत्र में उल्लिखित, किरातार्जुनीयम् के १५वें सर्ग की टीका लेखक गंगवंशी नरेश दुर्विनीत (५८० ई०), दण्डीकृत 'अवन्ति सुन्दरीकथा' में वर्णित २० वर्षीय भारवि के आश्रयदाता सिंहविष्णु (५७५ ई०-६०० ई०) इत्यादि अन्य वहिरंग प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दक्षिण भारत में अधिक समय तक निवास करने वाला महाकवि भारवि का समय छठीं शती के उत्तरार्ध से सातवीं शती ई० के पूर्वार्ध तक रहा होगा।

भारवि भगवान भूतनाथ शिव के परम भक्त थे। किरातार्जुनीयम् के अनेक श्लोकों से शिव के प्रति उनके भक्ति-भाव का ज्ञान होता है। महाकाव्य के १८वें सर्ग में अर्जुन ने जो भावपूर्ण शिव की स्तुति की है, वस्तुतः वह भारवि की ही स्तुति है।

भाषा-शैली

भारवि की शैली के संबंध में आलोचकों की मान्यता—'भारवेरर्थगौरवम्' किरातार्जुनीयम् में पूर्णरूप से उपलब्ध होती है। अर्थ-गौरव का तात्पर्य है—अल्प शब्दों में विपुल अर्थ का सन्निवेश। भारवि ने स्वयं स्थान-स्थान पर अपनी इस काव्यगत विशेषता का समर्थन किया है। उनकी स्वयं मान्यता है कि शब्दों के वर्ण स्पष्टरूप से उच्चारित किये जाने चाहिए। वे इतने मधुर हों कि शत्रु भी वशीभूत हों जायँ एवं पदों में स्वच्छता, मधुरता एवं गम्भीरता होनी चाहिए—

विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुतिः प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम्।
प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती॥

भारवि की वाणी स्फुट है, अर्थ गौरव से युक्त है, वे स्वयं कहते हैं—

स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्॥

प्रथम सर्ग में वनेचर भी शब्दसौष्ठव तथा अर्थगाम्भीर्य से सुशोभित तथा प्रमाणित अर्थ वाली वाणी का प्रयोग करने में समर्थ है—

द्विषां विघाताय विधातुमिच्छतो रहस्यनुज्ञामधिगम्य भूभृतः।
स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे।

भारवि की यह विशेषता है कि वे अपने कथोपकथनों में बहुत थोड़े शब्दों में प्रचुर अर्थ का सन्निवेश करते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो वे गागर में सागर भर देते हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त सूक्तियाँ साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं वहीं दूसरी ओर जीवन के लिए परम उपयोगी हैं।

'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः, सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः, विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः, वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुषु, वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः, सहसा विदधीत न क्रियाम् अविवेकः परमापदां पदम्' इत्यादि अन्य सूक्तियाँ मनुष्य के लिए परम उपयोगी हैं।

द्रौपदी की वाणी में वृहस्पति को भी आश्चर्य में डालने वाला अर्थगौरव है—अपि वागाधिपस्य दुवचं वचनं तद्विदधीत क्रियाम्। उसकी वाणी व्यथित तो करती है, परन्तु परिणाम में सुखदा है—

परिणामसुखे गरीयसि व्यथतेऽस्मिन् वचसि क्षतौजसाम्।
अतिवीर्यवतीव भेषजे बहुरल्पीयसि दृश्यते गुणः॥

जो मायावियों के साथ मायायुक्त आचरण नहीं करते हैं वे पराभव को प्राप्त होते हैं, शठ लोग सरल लोगों को मार डालते हैं—

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधानसंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः॥

सफल क्रोध वाले व्यक्ति के वशीभूत सभी प्राणी हो जाते हैं। परन्तु क्रोधशून्य व्यक्ति को प्रति न तो कोई सम्मान करता है, न ही उससे कोई डरता है—

अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना, न जातहार्देन न विद्विषादरः॥

सदैव अपकार में संलग्न राजा के साथ की गई सन्धि को किसी न किसी बहाने से भंग कर देना चाहिए—

न समयपरिरक्षणं क्षमं ते निकृतिपरेषु परेषु भूरिधाम्नः।
अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशा विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि॥

भावों को व्यक्त करने का साधन केवल भाषा ही है। भाषा का साधिकार प्रयोग करने वाला ही कवि अपने विचारों तथा अनुभूतियों और भावों को हृदयावर्जक पद्धति से प्रस्तुत कर सकता है। इस विद्या में भारवि अग्रणी हैं। व्याकरण शास्त्र के वे पंडित हैं। पाणिनिसम्मत सूत्रों से निष्पन्न अप्रचलित शब्दों का प्रयोग मिलता है। भाषा में भाववाच्य तथा कर्मवाच्य के प्रयोगों की अधिकता है तथा पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति है।

भारवि काव्य जगत में अलंकृत शैली के प्रवर्तक हैं तो भी उनका काव्य सर्वत्र क्लिष्ट नहीं है। कहीं-कहीं पर मधुर एवं रसपेशल पदावली भी दिखाई पड़ती है। प्रकृति एवं शृंगार रस की अभिव्यक्ति में वैदर्भी रीति का प्रयोग है, परन्तु युद्धप्रसंगों में गौड़ी रीति का प्रयोग है, जिससे भाषा अत्यन्त भावमयी किन्तु नीरस प्रतीत होती है।

भारवि की शैली के प्रसङ्ग में डा० भोला शंकर व्यास के विचार को देखिए—

"भारवि का अर्थ कालिदास के अर्थ की तरह अपने आप सूखी लकड़ी की तरह प्रदीप्त नहीं हो उठता। कालिदास की कविता में द्राक्षापाक है। अंगूर के दाने की तरह मुख में रखते ही रस की पिचकारी छूट पड़ती है, जबकि भारवि के काव्य में नारिकेलपाक है। वहाँ नारियल तोड़ने की सख्त मेहनत के बाद उसका रस हाथ आता है और कभी-कभी तो उसको तोड़ते समय रस इधर-उधर बह जाता है और उसमें से बहुत थोड़ा बचा हुआ ही सहृदय की रसना का आस्वाद्य होता है।"

आचार्य मल्लिनाथ ने ठीक ही कहा है—

नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः सपदि तद् विभज्यते।
स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम्॥

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भारवि की शैली अत्यन्त रोचक है। कुछ स्थलों में कठिन तो है, परन्तु यह सरस भी है। यदि समासान्त पदावली है तो रोचकता भी है। वस्तुतः भारवि की कविता में भाव तथा रस का अपूर्व सामञ्जस्य है। इसलिए कृष्ण कवि ने कहा कि भारवि के काव्य में अर्थ गौरव तो है ही, इसके साथ रसपेशलता भी है। इसलिए यह काव्य परवर्ती कवियों के लिए उपजीव्य हो सका है—

प्रदेशवृत्त्यापि महानमर्थं प्रदर्शयन्ती रसमादधाना।
साभारवेः सत्पथदीपिकेव रम्याः कृतिः कैरिव नोपजीव्या॥

———

किरातार्जुनीयम् की कथावस्तु

किरातार्जुनीयम् महाकाव्य का कथानक मूलतः महाभारत के वनपर्व से लिया गया है। यद्यपि यह कथा अल्प ही है, परन्तु कथा का अत्यधिक विकास कवि ने अपनी कल्पनाओं तथा वर्णन-प्रतिभा से किया है तथा इसका विस्तार १८ सर्गों में १०४० श्लोकों तक किया है।

प्रथम सर्ग में द्वैतवन में वनवास की अवधि व्यतीत कर रहे अनुजों एवं द्रौपदी सहित युधिष्ठिर के पास दुर्योधन के राज्यवृत्तान्त को जानकर लौटे हुए गुप्तचर के द्वारा दुर्योधन के राज्यवृत्तान्त का निवेदन तथा द्रौपदी के क्रोध का वर्णन है।

द्वितीय सर्ग में द्रौपदी के क्रोध का समर्थन भीम द्वारा होता है तथा द्रौपदी को युधिष्ठिर शान्त करते हैं।

तृतीय सर्ग में महर्षि के द्वारा युद्ध अवश्यम्भावी बताया जाता है एतदर्थ, अर्जुन को पाशुपत अस्त्र प्राप्ति के लिए प्रेरित करते हैं।

चौथे सर्ग में शरद्वर्णन किया गया है। पांचवें सर्ग में हिमालय पर्वत के इन्द्रकील पर्वत का महत्व बताया गया है तथा अर्जुन वहाँ पर तपस्या करने लगते हैं।

छठे सर्ग में अर्जुन के घनघोर तप को देखकर इन्द्र भयग्रस्त होकर तपस्या भंग करने के लिए अप्सराओं को भेजते हैं।

सातवें सर्ग में इन्द्र की आज्ञानुसार गन्धर्व तथा देवाङ्गनाएँ वायु मार्ग से इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचती हैं।

आठवें सर्ग में गन्धर्वों तथा देवाङ्गनाओं के वन विहार, काम क्रीड़ाओं का वर्णन किया गया है।

नवें सर्ग में रात्रि में चन्द्रोदय के मनोरम वातावरण में कामपीड़िता अप्सराओं के सुरापान तथा रतिविलासों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

१०वें सर्ग में अर्जुन की तपस्या को भंग करने के लिए अप्सराओं की कामक्रीड़ाओं तथा नृत्यगानादि का वर्णन एवं तपस्या भंग में असफल अप्सराओं का वापस इन्द्रलोक को लौटने का वर्णन है।

११वें सर्ग में अर्जुन के पास मुनि के वेश में इन्द्र का आना तथा अर्जुन के उद्देश्य को जानकर इन्द्र के प्रसन्न होने का वर्णन किया गया है।

१२वें सर्ग में अर्जुन की घोर तपस्या का, मूक नामक राक्षस का अर्जुनवध के लिए सूकर रूप धारण करना तथा अर्जुन की रक्षा के लिए शिव का किरातरूप धारण करने का वर्णन किया गया है।

१३वें सर्ग में सूकर वध के लिए अर्जुन तथा किरातरूपधारी शिव साथ-साथ बाण छोड़ते हैं। बाण के स्वामित्व को लेकर शिवगण तथा अर्जुन में विवाद का वर्णन किया गया है।

१४वें सर्ग में शिवगणों तथा अर्जुन के मध्य भीषण युद्ध का तथा शिव सेना के भागने का वर्णन किया गया है।

१५. वें सर्ग में अर्जुन तथा किरातवेशधारी शिव के घनघोर युद्ध का वर्णन है।

१६वें सर्ग में किरात के द्वारा अर्जुन के सभी दिव्यास्त्रों को काटने पर अर्जुन का मल्लयुद्ध के लिए प्रस्तुत होने का वर्णन है।

१७वें सर्ग में अर्जुन के द्वारा शिव के ऊपर वृक्षों तथा चट्टानों से आक्रमण करने का तथा शिव के द्वारा अर्जुन के सभी अस्त्र-शस्त्रों को काटने का वर्णन किया गया है।

१८वें सर्ग में मल्लयुद्ध में ऊपर उछलते हुए शिव को गिराने के लिए उनके चरणों को अर्जुन के द्वारा पकड़ने पर किरातरूपधारी शिव के वास्तविक रूप के प्रकट करने का वर्णन किया हैं एवं अर्जुन ने शिव वन्दना कर उनसे पाशुपत अस्त्र प्राप्ति का तथा शत्रुओं के ऊपर विजय पाने के आशीर्वाद का, इन्द्रादि देवताओं से भी दिव्यास्त्रों को प्राप्त करने का, एवं युधिष्ठिर के पास द्वैत वन लौटने का वर्णन किया गया है।

प्रथम सर्ग का सारांश

प्रथम सर्ग में कुल ४६ श्लोक हैं। ४४ श्लोक वंशस्थ छन्द में हैं तथा ४५वाँ पुष्पिताग्रा छन्द में और ४६वाँ श्लोक मालिनी छन्द में है।

प्रथम सर्ग का प्रारम्भ दुर्योधन के राज्यवृत्तान्त एवं प्रजा विषयक व्यवहार को जानने के लिए युधिष्ठिर के द्वारा भेजे गये वनेचर के लौटने से होता है।

वनेचर स्वामी के प्रति सच्ची निष्ठा के कारण युधिष्ठिर से सत्य ही बोलता है चाहे वह प्रिय हो अथवा अप्रिय क्योंकि वनेचर स्वामी का परम हितैषी है।

द्यूतक्रीड़ा के बहाने से प्राप्त किये हुए राज्य को अब दुर्योधन नीतिमार्ग से जीतना चाहता है, क्योंकि उसे युधिष्ठिरादि पाण्डवों से पराजय की आशंका है।

दुर्योधन कामादि छह शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके निरलस होकर अपने पौरुष का विस्तार कर रहा है। वह भृत्य, मित्र तथा बन्धुओं को अतिशय प्रेम व सम्मान देता है, वह धर्म, अर्थ, काम का सेवन पक्षपातरहित होकर समान भाव से करता है। इसलिए उसके त्रिगण परस्पर बाधित नहीं होते हैं—'न बाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम्'।

सुयोधन का सामप्रयोग दानयुक्त, दानक्रिया सम्मान युक्त तथा उसका विशिष्ट सम्मान बिना गुणों की अपेक्षा से नहीं होता है।

वह न्यायप्रिय शासक था। अतः शास्त्रों से अनुमोदित दण्ड व्यवस्था का प्रयोग करता था चाहे वह पुत्र हो अथवा शत्रु। 'रिपौ सुतेऽपि वा निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम्'।

पृथ्वी उसके सद्गुणों से प्रभावित होकर थनों को स्वयं दुह देती थी। दुर्योधन ने राज्य में सिंचाई की उत्तम व्यवस्था की थी, जिससे कुरुप्रदेश वर्षाजल के भरोसे न रहकर 'अदेवमातृक' हो गया था। धनुर्धारी योद्धा प्राण देकर भी उसका प्रिय करना चाहते हैं। दुर्योधन के अधीनस्थ राजा उसके आदेश को माला की भाँति शिरोधार्य करते हैं। 'गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते नराधिपैमाल्यिमिवास्य शासनम्'।

वार्तालाप के प्रसङ्ग में युधिष्ठिर के नामोच्चारण से अर्जुन के पराक्रम का स्मरण करके मुँह नीचा करके उसी तरह व्यथित होता है, जिस प्रकार तार्क्ष्य तथा वासुकि के नामों से युक्त मंत्रों के उच्चारित किये जाने पर गरुड़ के पंजे का स्मरण कर सर्प अधोमुख होकर पीड़ित होता है।

अपने पति के मुख से शत्रु दुर्योधन की सुचारु एवं सुदृढ़ शासन व्यवस्था का समाचार सुनकर भरतवंश की कुलवधू एवं व्यथित द्रौपदी ने स्त्रियोचित शालीनता को छोड़कर युधिष्ठिर को युद्धार्थ तत्पर होने के लिए प्रेरित करते हुए [illegible]हा 'परैत्वदन्यः क इवापहारयेन्मनोरमामात्मवधूमिवश्रियम्'।

द्रौपदी युधिष्ठिर को इन्द्रप्रस्थ में बिताये हुये राजसी ठाठ-बाट का स्मरण [illegible]दिलाती हुई कहती है कि जो भीम लाल चन्दन का लेप लगाते थे तथा रथ पर गमन करते थे वही अब धूलधूसरित पर्वतों के बीच में पैदल ही घूम रहे हैं। जिस धनञ्जय अर्जुन ने उत्तर कुरु प्रदेशों को जीतकर युधिष्ठिर को पर्याप्त सोना-चांदी दिया था, वह अब वल्कल वस्त्र ला रहा है। जुड़वाँ नकुल और सहदेव का शरीर भूशयन करने से कठोर हो गया है। स्वयं महाराज जो मङ्गलपाठकों के द्वारा जगाये जाते थे वही अब वन में सियारिनों की अकल्याणकारिणी आवाजों से जगते हैं।

युधिष्ठिर के मन को झकझोरती हुई द्रौपदी कहती है, संसार क्रोधहीन मनुष्य की मित्रता अथवां शत्रुता को महत्व नहीं देता—

अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः।

दुर्योधन मायावी एवं कुटिल है। अतः उसके साथ 'शठे शाठ्यम् समाचरेत्' नीति को अपनाना चाहिए—

व्रजन्ति ते मूढधियं पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।

शत्रुओं के अपकार में तत्पर हो जाने पर परम तेजस्वी आपका वनवास में रहने की सन्धि (प्रतिज्ञा) की रक्षा करना उचित नहीं है। क्योंकि विजयाकांक्षी राजा शत्रुओं के विषय में कपटपूर्वक सन्धि को तोड़ देते हैं—

अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशाः विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि।

युधिष्ठिर पुनः राजलक्ष्मी को प्राप्त करें—द्रोपदी की इस मंगलकामना के साथ प्रथम सर्ग समाप्त होता है।

विधिसमयनियोगाद्दीप्ति संहारजिह्मं
शिथिलवसुमगाधे मग्नमापत्पयोधौ।
रिपुतिमिरिमुदस्योदीयमानं दिनादौ
दिनकृतमिव लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः॥

किरातार्जुनीयम् का नायक

किरातार्जुनीयम् में नायक कौन है? इस प्रश्न की चर्चा कर लेना आवश्यक है, क्योंकि यह विद्वानों के बीच में विवाद का विषय रहा है। टीकाकार, चित्रभानु के मतानुसार इस महाकाव्य के नायक युधिष्ठिर हैं, क्योंकि कथा के प्रारम्भ, मध्य व अन्त में इन्हीं की प्रतिष्ठा है। वह कहते हैं यद्यपि दिव्यास्त्र लाभ अर्जुन को होता है, परन्तु उस अस्त्र से युधिष्ठिर के कार्यसाधन में सहायता मिलती है। अर्जुन का पराक्रम ही कुरु कुल को विनष्ट करता है, परन्तु अर्जुन युधिष्ठिर के ही अंग हैं। अतः कथानायक युधिष्ठिर ही हैं।

परन्तु मल्लिनाथ को उनका मत मान्य नहीं है। इस महाकाव्य का प्रयोजन है—दिव्यास्त्रलाभ। दिव्यास्त्ररूपफल की प्राप्ति अर्जुन को ही होती है तथा काव्य में प्रतिष्ठा अर्जुन की है। भले ही अर्जुन आरम्भ में नहीं आते परन्तु अर्जुन का नाम सुनने मात्र से ही दुर्योधन का हृदय फटने लगता है—'अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः ———————— व्यथते नताननः'। अर्जुन ही अतिशय शौर्य के धनी उत्तरकुरुविजेता, वासवोपम, धनञ्जय हैं।

यदि कथानायक युधिष्ठिर होते तो ग्रन्थ का नाम 'किरातायुधिष्ठिरीयम्' होता। ग्रन्थकार की दृष्टि में भी अर्जुन ही कथानायक हैं तभी उन्होंने ग्रंथ का नाम 'किरातार्जुनीयम्' रखा है। अतः निष्कर्षतः मल्लिनाथ ने उचित ही कहा है—'नेता मध्यमपाण्डवो भगवतो नारायणस्यांशजः'।

महाकविभारविविरचितम्
किरातार्जुनीयम् प्रथमः सर्गः

> श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीं
> प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम्।
> स वर्णिलिङ्गीविदितः समाययौ
> युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः ॥१॥

अन्वय—कुरूणाम् अधिपस्य श्रियः पालनीं प्रजासु वृत्तिंवेदितुम् यम् अयुङ्क्त वर्णिलिङ्गी सः वनेचरः विदितः (सन्) द्वैतवने युधिष्ठिरं समाययौ।

शब्दार्थ—कुरूणाम् = कुरु नामक जनपदों के। अधिपस्य = स्वामी दुर्योधन की। श्रियः पालनीम् = राजलक्ष्मी की संरक्षिका। प्रजासु = प्रजा विषयक। वृत्तिम् = व्यवहार को। वेदितुम् = जानने के लिए। यम् = जिसको। अयुङ्क्त = (युधिष्ठिर ने) नियुक्त किया था। वर्णिलिङ्गी = ब्रह्मचारी जैसा वेषधारी। सः = वह। वनेचरः = वननिवासी (किरात)। विदितः = समस्त वृत्तान्त जानकर। द्वैतवने = द्वैत नामक वन में। युधिष्ठिरम् = धर्मराज युधिष्ठिर के समीप। समाययौ = लौट आया।

हिन्दी अनुवाद—कुरु जनपद के राजा दुर्योधन की राजलक्ष्मी की रक्षिका प्रजाविषयक व्यवहार को जानने के लिए (युधिष्ठिर ने) जिसे नियुक्त किया था, वह ब्रह्मचारी जैसा वेषधारी वननिवासी (किरात) समस्त वृत्तान्त को जानकर द्वैतवन में युधिष्ठिर के पास लौट आया।

सन्दर्भ—प्रस्तुत श्लोक महाकवि भारवि विरचित, अर्थगौरव से परिपूर्ण, वृहत्त्रयी के अन्तर्गत परिगणित हमारी पाठ्य-पुस्तक 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत किया गया है। इस श्लोक में अज्ञातवास में निवास कर रहे महाराज युधिष्ठिर के द्वारा दुर्योधन के राज्य वृत्तान्त को जानने के लिए भेजे गये ब्रह्मचारी वेषधारी वनेचर के, युधिष्ठर के पास लौटने का वर्णन है।

हिन्दी भावार्थ—कुरुप्रदेश का स्वामी राजा दुर्योधन अपनी प्रजा के साथ किस तरह का व्यवहार करता है, जिससे कि साम्राज्य लक्ष्मी उसके पास सुरक्षित बनी हुई है इत्यादि तथ्यों को जानने के लिए युधिष्ठिर ने जिस वननिवासी किरात को नियुक्त किया था, ब्रह्मचारी का वेष धारण करने वाला

वह गुप्तचर समाचारों से अवगत होकर द्वैतवन में युधिष्ठिर के पास लौट आया।

संस्कृत सन्दर्भः—इदं सुललितं रसभावसंवलितं श्लोकोऽयम् महाकवि-भारविविरचितात् किरातार्जुनीयमित्याख्यात् अस्माकम् पाठ्यग्रन्थात् प्रथम-सर्गात् समुद्धृतम् वर्तते। अस्मिन् श्लोके अज्ञातवासप्रसङ्गे महाराज्ञा युधिष्ठिरेण प्रेषितः, दुर्योधनस्य राज्यवृत्तान्तं ज्ञात्वा द्वैतवने युधिष्ठिरमुपागतस्य ब्रह्मचारी-वेषधारी-वनेचरस्य वर्णनमस्ति।

संस्कृत व्याख्या—कुरूणां कुरुजनपदानाम् अधिपस्य स्वामिनः राज्ञः दुर्योधनस्य श्रियः साम्राज्यलक्ष्म्याः पालनीं संरक्षिकां प्रजासु प्रजाविषयके वृत्तिम् व्यवहारम् वेदितुम् ज्ञातुम् ये जनं अयुङ्क्त नियुक्तवान् वर्णिलिङ्गी ब्रह्मचारिवेषवान् सः वनेचरः किरातः विदितः सम्पूर्णवृत्तातं ज्ञात्वा द्वैतवने-द्वैतारण्ये युधिष्ठिरं युधिष्ठिरस्य समीपं, समाययौ-आजगाम।

व्याकरण—कुरुणाम्-कुरूणां निवासाः कुरवः जनपदाः कुरु शब्द में 'तस्य निवासः' सूत्र से अण् लगा, जनपदे लुप् से अण् प्रत्यय का लोप तथा 'लुपि युक्तवत् व्यक्तिवचने' सूत्र से कुरु शब्द बहुवचन हो गया। श्रियः-श्रयति पुरुषमिति श्रीः तस्या श्रियः। वर्णिलिङ्गीं-वर्णः प्रशस्तिरस्यास्तीति वर्णी तस्य लिङ्गम् (षष्ठी त०) वर्णिलिङ्गमस्यास्तीति वर्णिलिङ्गीं-ब्रह्मचारी। वर्ण तात्पर्य है प्रशस्ति अर्थात् कामभावनाओं का अभाव। यह वर्ण जिसके पः वह है वर्णी। वर्णी (ब्रह्मचारी) का लिङ्ग अर्थात् चिह्न (जटाजूट क+ इत्यादि) को धारण करने वाला है वर्णिलिङ्गी। वनेचरः-वने चरतीति व (चरेष्टः इति ट प्रत्ययः तत्पुरुषे कृति बहुलम् इति सप्तम्यां अलुक्। युधिष्ठि तिष्ठतीति स्थिरः युधि रणे स्थिरः तम् युधिष्ठिरम् हलन्तात् सप्तम्यां अलुक स सप्तमी का लोप नहीं हुआ, गवियुधिभ्यां स्थिरः इति षत्वं।

विशेष—वृत्तिं, वेदितुम् में व, वर्णिलिङ्गी एवं विदितः में व तथा वने वनेचर में वने की आवृत्ति है। अतः वृत्यनुप्रास। वंशस्थ छन्द है।

समाचार कर्णप्रिय न होने पर भी युधिष्ठिर से दुर्योधन के राज्य का वृत्तांत निवेदन करते हुए वनेचर का मन व्यथित नहीं हुआ।

कृतप्रणामस्य महीं महीभुजे,
जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः।
न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं
प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः ॥२॥

अन्वय—कृतप्रणामस्य सपत्नेन जितां महीं महीभुजे निवेदयिष्यतः तस्य मनः न विव्यथे, हि हितैषिणः मृषा प्रियं प्रवक्तुम् न इच्छन्ति।

शब्दार्थ—कृतप्रणामस्य = जिसने प्रणाम कर लिया हो। सपत्नेन जितां = शत्रु के द्वारा जीती गई। महीम् = पृथ्वी के वृत्तांत का। महीभुजे = महीपाल युधिष्ठिर के लिए। निवेदयिष्यतः = निवेदन करने वाले। तस्य मनः = उस वनेचर का मन। न विव्यथे = व्यथित नहीं हुआ। हि = क्योंकि। हितैषिणः = हितैषी लोग। मृषा = मिथ्या, असत्य। प्रियं = प्रिय वचन। प्रवक्तुम् = कहने के लिए। न इच्छन्ति = इच्छा नहीं करते हैं।

हिन्दी अनुवाद—प्रणाम कर लेने वाले, शत्रु के द्वारा जीती गई पृथ्वी (के वृत्तांत) को महीपाल (युधिष्ठिर) से निवेदन करने वाले उस (वनेचर) का मन व्यथित नहीं हुआ। क्योंकि हितैषी लोग मिथ्या एवं प्रिय बोलने की इच्छा नहीं करते हैं।

हिन्दी भावार्थ—दुर्योधन की सुदृढ़ राज्य व्यवस्था के बारे में अपने स्वामी युधिष्ठिर से बताते हुए उस वनेचर का मन व्यथित नहीं हुआ, क्योंकि स्वामी के कल्याण के इच्छुक व्यक्ति असत्य एवं कर्णप्रिय बातों को स्वामी से नहीं कहेगा।

संस्कृत व्याख्या—कृतः प्रणामः येन तस्य कृतप्रणामस्य विहितनमस्कारस्य [illegible]त्नेन शत्रुणा दुर्योधनेन जितां स्वाधीनीकृतां महीं पृथ्वीं महीभुजे भूपतये [illegible]ष्ठिराय निवेदयिष्यतः कथयिष्यतः तस्य वनेचरस्य मनः चित्तं न विव्यथे—न [illegible]थतो दुखितो बभूव हि यतः हितैषिणः स्वामिहितार्थिनः मृषा असत्सभूतं प्रियं [illegible]रं वचः प्रवक्तुम् वक्तुम् न इच्छन्ति न अभिलषन्ति।

व्याकरण—कृतः प्रणामो येन (बहुव्रीहि)। महीभुजे—महीं भुनक्ति इति महीभुज् तस्यै महीभुजे। हितैषिणः—हितं इच्छन्ति हितैषिणः विशेष—प्रस्तुत श्लोक में 'वनेचर के हित के लिएं सत्य बात कहना' रूप विशेष का तथा "हितैषी पुरुष प्रिय तथा असत्य वचन नहीं बोलते" रूप सामान्य से समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

स्वामी युधिष्ठिर की आज्ञा प्राप्त कर वनेचर ने युधिष्ठिर से कहना प्रारम्भ किया—

> **द्विषां विघाताय विधातुमिच्छतो**
> **रहस्यनुज्ञामधिगम्य भूभृतः।**
> **स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं**
> **विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे ॥३॥**

अन्वय—द्विषां विघाताय विधातुमिच्छतः भूभृतः अनुज्ञाम् अधिगम्य स रहसि सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं विनिश्चितार्थाम् वाचम् आददे।

शब्दार्थ—द्विषाम् = शत्रुओं के। विघाताय = विनाश के लिए। विधातुम् = प्रयत्न करने के लिए। इच्छतः = इच्छा करने वाले। भूभृतः = राजा युधिष्ठिर की। अनुज्ञाम् = आज्ञा को। अधिगम्य = पाकर। स = वनेचरः। रहसि = एकान्त में। सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी = शब्दसामर्थ्य तथा अर्थगौरव के वैशिष्ट्य से समलङ्कृत। विनिश्चितार्थाम् = विशेषरूप से निर्णीत तात्पर्य वाली। वाचम् = वाणी को। आददे = बोला।

हिन्दी अनुवाद—शत्रुओं के विनाश के लिए प्रयत्नाभिलाषी राजा युधिष्ठिर की आज्ञा को प्राप्त कर वह वनेचर एकान्त में शब्द सामर्थ्य एवं अर्थगौरव के वैशिष्ट्य से समलङ्कृत एवं विशेष रूप से निर्णीत तात्पर्य वाली वाणी को बोला।

भावार्थ—शत्रु विनाश के इच्छुक राजा युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर गुप्तचर वनेचर ने शब्द और अर्थ शक्ति से युक्त तथा प्रमाण सिद्ध वचन कहे।

संस्कृत व्याख्या—द्विषां शत्रूणाम् विघाताय विनाशाय। विधातुम् व्यापार कर्तुम्। इच्छतः। अभिलषतः भूभृतः महीपालस्य। युधिष्ठिरस्य। अनुज्ञाम् आज्ञाम्। अधिगम्य प्राप्य स वनेचरः सौष्ठवौदार्य विशेषशालिनीं—शब्दसामर्थ्य-गौरववैशिष्ट्यसमलंकृता विनिश्चितार्थाम्—विशेष-रूपेण निर्णीततात्पर्ययुक्ताः वाचम्—वाणीम्-आददे-अवोचत्।

व्याकरण—भुवं विभर्तीति भूभृत (भू + भृञ् + क्विप् कर्त्त+ सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीम् = सुष्ठु भावः सौष्ठवम् (सुष्ठु + अञ्) उदार भावः औदार्य्यम् (उदार + ष्यञ्) सौष्ठवञ्च औदार्यञ्च सौष्ठवौदार्ये (इतरेत द्वन्दः)। तयोविशेषः तेन शालते ताम् सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीम्। विनिश्चितार्थाम् विशेषेण निश्चितः विनिश्चितः (तत्पु०) तादृशः अर्थः यस्याः सा (बहुव्रीहिः) ताम्। विशेष-अनुप्रास अलंकार।

वार्ता प्रस्तुत करने के पूर्व वनेचर हितकारी एवं अप्रिय निवेदन से उत्पन्न युधिष्ठिर के कोप से बचने की क्षमा याचना करता है—

> **क्रियासु युक्तैर्नृप चारचक्षुषो,**
> **न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः।**
> **अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधुसाधु वा**
> **हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ॥४॥**

अन्वय—हे नृप! क्रियासु युक्तैः अनुजीविभिः चारचक्षुषः प्रभवः न वञ्चनीयाः, अतः असाधु साधु वा क्षन्तुम् अर्हसि। हितं मनोहारि च वचः दुर्लभम्।

हिन्दी अनुवाद—हे राजन्! करणीय विषयों में नियुक्त किये गये भृत्यों के द्वारा गुप्तचर रूपी नेत्रों वाले स्वामियों को ठगा नहीं जाना चाहिए। अतः अप्रिय अथवा प्रिय (मेरे कथन) को (आप) क्षमा करने योग्य हैं। (क्योंकि) हितकारी और प्रिय वचन दुर्लभ होता है।

संस्कृत व्याख्या—हे राजन्! क्रियासु कार्येषु युक्तै नियुक्तैः अनुजीविभिः सेवकैः चारचक्षुषः गुप्तचरलोचनाः प्रभवः राजानः न वञ्चनीयाः न प्रतारणीयाः अतः अस्मात् कारणात् असाधु कर्णप्रियं साधु कर्णप्रियं वा क्षन्तुम् सोढुम् अर्हसि योग्योऽसि यतः दुर्लभ हितकरं मनोहारि प्रियं वचः वचनं दुर्लभं दुःखेन प्राप्यं (भवति)।

शब्दार्थ—नृप = राजन्। क्रियासु = करणीय कार्यों में। युक्तै = नियुक्त किये गये। अनुजीविभिः = भृत्यों को। चारचक्षुषः = गुप्तचर रूपी नेत्रों वाले। प्रभवः = स्वामियों को। न वञ्चनीयाः = नहीं ठगा जाना चाहिए। अतः = इसलिए। असाधु = अप्रिय। साधु = प्रिय। वा = अथवा। क्षन्तुम् = क्षमा करने। अर्हसि = योग्य है। हितं = हितकारी। मनोहारि = मन को प्रिय लगने वाले। वचः = वचन। दुर्लभम् = दुर्लभ होता है।

भावार्थ—कार्यों में नियुक्त किये गये सेवकों द्वारा राजाओं को प्रवञ्चित न किया जाना चाहिए, क्योंकि गुप्तचरों की ही सूचना पर राजा के द्वारा अति महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये जाते हैं। अतः गुप्तचरों को स्वामी से यथार्थ निवेदन करना चाहिए अतः अप्रिय अथवा प्रिय मेरी बात को आप क्षमा करें, क्योंकि प्रिय और हितकारी बात दुर्लभ होती है।

व्याकरण—अनुजीविभिः = अनुजीवितुं शीलम् एषाम् इति अनुजीविनः (अनु + जीव + णिनि)। चारचक्षुषः-चरन्ति इति चराः (चर् + अच् कर्त्तरि) चराः एव चाराः (चर + प्रज्ञादित्वात् अण् प्रत्यय) चाराः एव चक्षूंषि येषान्ते = चारचक्षुषः। मनोहारि = मनोहर्त्तुम् शीलम् यस्येति मनोहारि (मनस् + हृ + णिनि कर्तरि उपपदतत्पुरुष)। दुर्लभम् = दुःखेन लभ्यते इति दुर्लभम् (उपपद तत्पुरुष) (दुर् + लभ् + खल् कर्मणि)।

अलंकार—विशेष का सामान्य से समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार।

राजा को हितेच्छु व्यक्ति के द्वारा कहे गये वचनों को शान्त होकर सुनना चाहिए—

> स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं
> हितान्न यः संशृणुते स किम्प्रभुः।
> सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं
> नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः ॥५॥

अन्वय—यं अधिपं साधु न शास्ति स किंसखा, यः हितान्न संश्रृणुते स किंप्रभुः, हि नृपेसु अमात्येषु अनुकूलेषु च सर्वसम्पदः सदा रतिं कुर्वते।

शब्दार्थ—यः = जो व्यक्ति। अधिपं = स्वामी, राजा को। साधु = समुचित। न = नहीं। शास्ति = उपदेश देता है। स = वह। किंसखा = क्या वह बुरा मित्र है अथवा वह क्या मित्र है। यः = जो। हितात् = हितैषी सेवकों से। न संशृणुते = (हितकारी) सत्परामर्श नहीं सुनता। स = वह। किम्प्रभुः = क्या वह स्वामी है अथवा वह बुरा स्वामी है। हि = क्योंकि। नृपेषु = राजाओं के। अमात्येषु = मंत्रियों के। अनुकूलेषु = परस्पर अनुरक्त रहने पर ही। सर्वसम्पदः = समस्त संपत्तियाँ। सदा = सदैव। रतिं = अनुराग। कुर्वते = करती हैं।

हिन्दी अनुवाद—जो (हितैषी, सेवक) स्वामी को समुचित उपदेश नहीं देता है, क्या वह मित्र है? अथवा वह कुत्सित मित्र है। जो (राजा) हितै[illegible] व्यक्ति की बात नहीं सुनता है, क्या वह स्वामी है? अथवा वह कुत्सित स्वा[illegible] है। क्योंकि राजाओं एवं मंत्रियों के (परस्पर) अनुरक्त रहने पर ही स[illegible] सम्पत्तियाँ (राज्य में) सदा अनुराग करती हैं।

हिन्दी भावार्थ—यदि राजा एवं मंत्री आपस में विचार, रीति, नीति में विरोध भाव रखते हों, तो उस राज्य में साम्राज्य-लक्ष्मी चिरकाल तक अक्षुण्ण नहीं रहेगी। क्योंकि मंत्रियों तथा राजाओं के परस्पर अनुकूल रहने पर ही साम्राज्य लक्ष्मी सुदृढ़ रूप में स्थित रहेगी। अतः राजा को मंत्री का सत्परामर्श देना चाहिए।

संस्कृत व्याख्या—यः (जनः) अधिपं—प्रभुं, साधु—समुचितं, न शास्ति—न उपदिशति, स किं सखा—सः किंसखा कुत्सितं मित्रम्, यः राजा, हितात्—हितैषिणः न श्रृणोति—सम्यक् न श्रृणोति सः—राजा किं—कुत्सितः प्रभुः—स्वामी अस्ति, हि—नृपेषु—राजसु, अमात्येषु—मंत्रिषु—परस्परानुरक्तेषु,

सर्वसम्पदः—सर्वा सम्पत्तयः, सदा—सर्वदा, रतिं—अनुरागं कुर्वन्ति। अतएव मया वक्तव्यम् भवता च हितकरं वचनं श्रोतव्यमिति, सुशान्तमनसा।

व्याकरण—किंसखा—कुत्सितः सखा (कर्मधारय स०) किं शब्द प्रश्नवाची भी होता है तथा 'किंक्षेपे' सूत्र से कुत्सा अर्थ होने से समास में प्रयुक्त हुआ है। शास्ति—शास् + लट् ति। हितात्—धा + क्त नपुंसके भावे = हितम्। हितमस्ति अस्य इति। हित् + अच् हितः तस्मात् हितात्। किंप्रभु—कुत्सितः प्रभुः किंप्रभुः (कर्मधारय समास) अनुकूलेषु—कूलम् गता अनुकूलाः तेषु अनुकूलेषु। सर्वसम्पदः—सम्पद्यते इति सम्पदः (सम् + पद् + क्विप्) भावे। सर्वसम्पदः—सर्वा सम्पदः (कर्मधा०) अमात्येषु—अमा सह भवा अमात्याः तेषु अमात्येषु।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

गर्व रहित वनेचर युधिष्ठिर से कहता है—

> **निसर्ग दुर्बोधमबोधविक्लवाः,**
> **क्व भूपतीनां चरितं क्व जन्तवः?**
> **तवानुभावोऽयमवेदि यन्मया,**
> **निगूढ़तत्त्वं नयवर्त्म विद्विषाम्॥६॥**

अन्वय—निसर्गदुर्बोधभूपतीनां चरित क्व, अबोधविक्लवाः जन्तवः क्वः, [निगू]ढतत्त्वं विद्विषां नयवर्त्म यत् मया अवेदि अयं तव अनुभावः।

शब्दार्थ—निसर्गदुर्बोधम् = स्वभाव से ही दुर्ज्ञेय। भूपतीनां = राजाओं का। चरितं = चरित। क्व = कहाँ। अबो[ध]विक्लवाः = अज्ञान के कारण अशक्त। जन्तवः = तुच्छ जीव। निगूढ़तत्त्वं = अति गुप्त तत्त्वों वाला। विद्विषां = शत्रुओं का। नयवर्त्म = नीतिमार्ग। यन्मया अवेदि = जो कुछ मैंने जाना। अयं = यह। तवानुभावः = आपका प्रभाव है।

हिन्दी अनुवाद—(हे स्वामी) स्वभाव से दुर्ज्ञेय कहाँ राजाओं का चरित और कहाँ अज्ञान के कारण अशक्त (मेरा जैसा) तुच्छ जीव। शत्रुओं के अति गुप्त तत्त्वों वाले नीति मार्ग को जो कुछ मैंने जाना, यह आपका प्रभाव है।

भावार्थ—कहाँ द्वैधीभाव (कपटपूर्ण आचरण) धारण करने वाले राजाओं का अत्यन्त कठिनतापूर्वक जानने योग्य चरित्र (और) कहाँ अज्ञान एवं अशिक्षा के कारण शक्तिहीन मेरा जैसा पामर प्राणी। षाड्गुण्य समन्वित एवं

अनावृत यथार्थ स्वरूप वाले राजनीति के मार्ग को यत्किञ्चित मैंने जाना वह महाराज युधिष्ठिर की शिक्षा-दीक्षा का ही परिणाम है।

संस्कृत व्याख्या—भूपतीनां—महीपालानाम्, निसर्गदुर्बोधस्वभाव—दुर्ज्ञेयं चरितं, क्व—कुत्र, अबोधविक्लवाः—अज्ञानोपहताः (मादृशाः) जन्तवः —क्षुद्रजनाः, (उभयोः कदापि साम्यं न संघटते) विद्विषां—शत्रूणां, निगूढतत्त्वं—अतिगुप्ततत्त्वं, नयवर्त्म—नीतिमार्गम् यत्—यत्किञ्चित् मया—वनेचरेण अवेदि—ज्ञातम्, अयं—शत्रुनीतिमार्गज्ञानं, तव—युधिष्ठिरस्य, अनुभावः—प्रभावः अस्ति।

व्याकरण—निसर्गेण निसृज्यते इति निसर्गः तेन। दुर्बोधम्—निसर्गेण दुर्बोधम् (तृ० तत्पुः) अबोधविक्लवाः—न बोधः इति अबोधः अबोधेन विक्लवाः अबोधविक्लवाः (तृ० तत्पु०) अनुभावः—अनुगतः भावः अनुभावः। निगूढतत्त्वं—निगूढतत्त्वं यस्य तत् (बहु० समास) (नि + गुह् + क्त)

दुर्योधन का राज्य वृत्तान्त निवेदित करते हुए वनेचर युधिष्ठिर से कहता है कि द्यूतक्रीड़ा एवं कपट के द्वारा प्राप्त राज्य को दुर्योधन अब नीतिपूर्वक चलाने का प्रयास कर रहा है—

> **विशङ्कमानो भवतः पराभवं,**
> **नृपासनस्थोऽपि वनाधिवासिनः।**
> **दुरोदरच्छद्मजितां समीहते,**
> **नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः ॥७॥**

अन्वय—नृपासनस्थोऽपि सुयोधनः वनाधिवासिनः भवतः पराभवं विशङ्कमानः दुरोदरछद्मजितां जगतीं नयेन जेतुं समीहते।

शब्दार्थ—नृपासनस्थोऽपि = नृप के आसन अर्थात् सिंहासनारूढ़ होते हुए भी सुयोधन। वनाधिवासिन = वन में निवास करने वाले। भवतः = आपसे। पराभवं = पराजय की। विशङ्कमानः = आशङ्का करता हुआ। दुरोदरछद्मजितां = द्यूत के बहाने से जीती हुई। जगतीं = पृथ्वी को। नयेन = नीति से। जेतुं = जीतने के लिए। समीहते = चेष्टा कर रहा है।

हिन्दी अनुवाद—सिंहासनारूढ़ होते हुए भी सुयोधन वन में निवास करने वाले आपसे पराजय की आशंका करता हुआ द्यूत के बहाने से जीती हुई पृथ्वी को (अब) नीति से जीतने की इच्छा कर रहा है।

भावार्थ—राज्यारूढ़ होता हुआ भी सुयोधन अर्जुन इत्यादि भाइयों के पराक्रम के कारण वन निवासी आप से सम्भावित पराजय के कारण भय की

आशंका से ग्रस्त रहता है। अतः जुए के छल से जीती हुई पृथ्वी को अब नीति से प्राप्त करना चाहता है।

संस्कृत व्याख्या—नृपासनस्थोऽपि—सिंहासनाधिरूढोऽपि वनाधिवासिनः—वननिवासिनः भवतः—त्वत्तः पराभवं—पराजयं विशङ्कमानः—आशंकमानः सन् दुरोदरछद्मजितां—द्यूतक्रीड़ाच्छलेनोपार्जितां जगतीं—पृथ्वीं नयेन—राजनीत्या जेतुं—वशीकर्त्तुं समीहते—चेष्टते।

व्याकरण—विशङ्कमानः—विशङ्क + शानच् कर्तरि। नृपासनस्थः—नृन् पाति इति नृपः, आस्यते यस्मिन्—आसनम् नृपासने तिष्ठति इति दुरोदरम् दुष्टं उदरं यस्य तत् दुरोदरम् तस्य छद्म तेन जितां ताम् दुरादरछद्मजितां। सुयोधनं—सुखेन युध्यते इति सुयोधनः।

अलंकारः—काव्यलिङ्ग अलंकार।

आशंकाग्रस्त होता हुआ वह कुटिल सुयोधन अपने गुणों का विस्तार कर यश प्राप्त करना चाहता है—

> **तथापि जिह्मः स भवज्जिगीषया,**
> **तनोति शुभ्रं गुणसम्पदा यशः।**
> **समुन्नयन भूतिमनार्यसङ्गमा—**
> **द्वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः ॥८॥**

अन्वय—तथापि जिह्मः स भवज्जिगीषया गुणसम्पदा शुभ्रं यशः तनोति, भूतिं समुन्नयन् महात्मभिः समं विरोधः अपि अनार्यसङ्गमात् वरं।

शब्दार्थ—तथापि = तो भी। जिह्मः = कुटिल। सः = वह। भवज्जिगीषया = आपको जीतने की अभिलाषा से। गुणसम्पदा = (दयादाक्षिण्यादि) सद्गुणों की महिमा से। शुभ्रं = निष्कलंक। यशः = कीर्ति को। तनोति = विस्तारित करता है। भूतिं = ऐश्वर्य की। समुन्नयन् = अभिवृद्धि करता हुआ। महात्मभिः = सज्जनों के। समः = साथ। विरोधोऽपि = विरोध भी। अनार्यसङ्गमात् = दुर्जन के संसर्ग (की अपेक्षा) वरं = श्रेष्ठ होता है।

हिन्दी अनुवाद—तो भी कुटिल वह दुर्योधन आपको जीतने की अभिलाषा से अपने (दयादाक्षिण्यादि) सद्गुणों की गरिमा के द्वारा (अपने) निष्कलङ्क यश का विस्तार कर रहा है। ऐश्वर्य की अभिवृद्धि करता हुआ सज्जनों के साथ विरोध भी दुर्जन के संसर्ग (की अपेक्षा) से श्रेष्ठ होता है।

संस्कृत व्याख्या—तथापि—साशङ्कोऽपि, जिह्मः—कुटिलः स दुर्योधनः, भवज्जिगीषया—भवज्जयेच्छया गुणसम्पदा—दयादाक्षिण्यादिसद्गुणगरिमया, शुभ्रं—निष्कलङ्क, यशः, कीर्तिं; तनोति विस्तारयति। भूतिं—ऐश्वर्यं, समुन्नयन्—सम्यक् रीत्या अभिवृद्धि कारयन्, महात्मभिः—सज्जनैः आर्यजनैः वा, समं—सार्धम्, विरोधोऽपि—कलहोऽपि, अनार्यसङ्गमात् दुर्जनसंसर्गात् अपेक्षया वरं—श्रेष्ठं भवति।

व्याकरण—जिह्मः—जहाति सरलमार्गमिति जिह्मः। भवज्जिगीषया जेतुमिच्छा जिगीषा, भवतः जिगीषा भवज्जिगीषया। भवज्जिगीषया (षष्ठी तत्पु०) तथा भवज्जिगीषया। गुण सम्पदा-गुणानाम् सम्पत् गुणसम्पत् तया (ष० तत्पु०) अनार्यसङ्गमात्—अर्य्यन्ते गम्यन्ते आचार पूतत्वात् आश्रीयन्ते इति आर्याः। न आर्याः अनार्याः (नञ् तत्पु०) अनार्याणां सङ्गमः तस्मात्—अनार्यसङ्गमात्।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

दुर्योधन प्रजा को प्रसन्न करने के लिए मनु द्वारा उपदिष्ट शासन पद्धति को प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है।

कृतारिषड्वर्गजयेन मानवी—
मगम्यरूपां पदवीं प्रपित्सुना।
विभज्य नक्तन्दिवमस्ततन्द्रिणा,
वितन्यते तेन नयेन पौरुषम्॥९॥

अन्वय—कृतारिषड्वर्गजयेन अगम्यरूपां मानवीं पदवीं प्रपित्सुना अस्ततन्द्रिणा तेन नक्तन्दिवं विभज्य नयेन पौरुषं वितन्यते।

शब्दार्थ—कृतारिषड्वर्गजयेन—काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद् मत्सर रूप छः अन्तःशत्रुओं को जीत लेने वाले अगम्य रूपां—(मनुष्य मात्र के लिए) दुष्प्राप्यस्वरूप वाली मानवीं—मनूपदेशित। पदवीं—प्रजापालन पद्धति को, प्रपित्सुना—प्राप्त करने की इच्छा वाले। अस्ततन्द्रिणा—आलस्य रहित। तेन—उस दुर्योधन के द्वारा। नक्तन्दिवं—दिन रात का (उचित) समय विभाग करके। नयेन—नीति के द्वारा। पौरुषं—पुरुषार्थ को। वितन्यते—विस्तृत किया जा रहा है।

हिन्दी अनुवाद—(कामक्रोधादि) छः अन्तःशत्रुओं को जीत लेने वाले (मनुष्य मात्र के लिए) दुष्प्रभाव स्वरूप वाली आलस्य रहित मनूपदेशित प्रजा

पालन पद्धति को प्राप्त करने की इच्छा वाले उस (दुर्योधन) के द्वारा दिन-रात का (उचित) समय-विभाग करके अब नीतिपूर्वक पुरुषार्थ को विस्तृत किया जा रहा है।

भावार्थ—प्रजा में अन्यायमार्गी छवि के कारण अब दुर्योधन के द्वारा काम-क्रोधादि अन्तःशत्रुओं को जीतकर धर्मशास्त्रों में उपदेशित प्रजापालन पद्धत्ति को प्राप्त करने की इच्छा से युक्त होकर कार्य के अनुसार समय का उचित विभाजन करके नीतिपूर्वक, पुरुषार्थ का विस्तार किया जा रहा है।

संस्कृत व्याख्या—कृतारिषड्वर्गजयेन—कामक्रोधादि-षट्संख्याकाः अन्तः शत्रवः वशीकताः। अगम्यरूपां—मनुष्यमात्रं दुष्प्राप्या। मानवीं-मनूपदिष्टां सदाचारानुमोदितां। पदवीं-प्रजापालन पद्धतिं। प्रपित्सुना—प्राप्तुमिच्छता। अस्त-तन्द्रिणा—निरलसेन। तेन—दुर्योधन। नक्तंदिवम्—अहोरात्रं विभज्य— यथासमयं विभागं कृत्वां नयेन—राजनीत्या—पौरुषं—उद्योगं—वितन्यते— विस्तार्यते।

संस्कृत व्याकरण—कृतारिषड्वर्गजयेन—षण्णां वर्गः षड्वर्गः (षष्ठी तत्पु०) अरीणां षड्वर्गः—अरिषड्वर्गः तस्य जयः अरिषड्वर्गजय कृतः अरिषड्वर्गजयः तेन दुर्योधनेन (बहुब्रीहि स०)। मानवीं—सकलवेदार्थमननात् मनुः तस्य इयम् इति मानवीं (मनु + अण् + ङीप्)। अगम्यरूपाम्—न गम्यं रूपं यस्याः सा ताम् अगम्यरूपां (बहुब्रीहि स०)। प्रपित्सुना—प्रपत्तुमिच्छुना तेन (प्र + पद् + सन् + उ कर्तरि)। नक्तंदिवम्—नक्तञ्च दिवा च नक्तंदिवम् (द्वन्द समा०)। अस्ततन्द्रिणा—अस्ता तन्द्रिः येनः तेन (बहुब्रीहि समास)। पौरुषं—पुरुषस्य कर्म पौरुषं (पुरुष + अण्)

दुर्योधन का सेवकों आदि के प्रति वर्तमान प्रेमभाव का वर्णन वनेचर करता है—

> **सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः,**
> **समानमानान् सुहृदश्च बन्धुभिः।**
> **स सन्ततं दर्शयते गतस्मयः**
> **कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम्॥१०॥**

अन्वय—गतस्मयः स सन्ततं साधु अनुजीविनः प्रीतियुजः सखीनिव, सुहृदश्च समानमानान् बन्धुभिः इव, बन्धुतां कृताधिपत्यामिव दर्शयते।

शब्दार्थ—गतस्मयः = अहङ्कारविहीन। स = वह (दुर्योधन)। सन्ततं = निरन्तर। साधु = निष्कपट भाव से। अनुजीविनः = सेवकों को। प्रीतियुजः

सखीन् इव = स्नेही सखाओं के समान। सुहृदश्च = सखाओं को। समानमानान् = (बन्धुजनों के) तुल्य सम्मान वाले। बन्धुभिः इव = भाइयों की भांति। च- और। बन्धुता = बन्धु-समूह को। कृताधिपत्यमिव = स्वामियों के समान। दर्शयते = दिखाता है।

हिन्दी अनुवाद—अहंकारविहीन वह (दुर्योधन) निरन्तर निष्कपट भाव से सेवकों को स्नेही सखाओं के समान सखाओं को (बन्धुजनों के) तुल्य सम्मान वाले भाइयों की भांति और बन्धु-समूह को स्वामियों के समान दिखाता है।

भावार्थ—पूर्वस्वभाव के विपरीत अब दुर्योधन अपने सेवकों के साथ प्रिय मित्रों जैसा, तथा मित्रों के साथ भाइयों जैसा तथा निरन्तर भातृसमूह अपने अधिकारियों के समान मानता है।

संस्कृत व्याख्या—गतस्मयः—परित्यक्तगर्वः, सः—दुर्योधनः, सन्ततं—निरन्तरं, अनुजीविनः—सेवकान्। प्रीतियुज—स्निग्धान्, सखीन् इव—मित्राणि इव, साधु—निष्कपटरूपेण, बन्धुभिः इव—भातृजनैः इव, बन्धुतां—भातृसमूहम्, कृताधिपत्यमिव दत्ताधिकारिताम् अधिपति इव, दर्शयते—व्यवहरति।

व्याकरण—गतस्मयः—गतः स्मयः (अहङ्कारः) यस्य सः (बहुव्रीहि समास) सन्ततं—(सम् + तम् + क्त) 'समो वा ततहितयोः' सूत्र से सम् उपसर्ग का 'म्' तत् और हित् परे रहने पर विकल्प से लुप्त हो जाता है। अतः वैकल्पिक रूप 'सततम्' भी हुआ। प्रीतियुजः—प्रीत्या युज्यन्ते ये तान् (प्रीति + युज + क्तिन्) अनुजीविनः — द्रष्टव्य श्लोक—४। सुहृद्—सुशोभनं हृदयं येषां तान्। कृताधिपत्याम्—अधि पातीति अधिपतिः (अधि + पा + डति)। तस्य भावः आधिपत्यम्—कृतं आधिपत्यं यस्याः सा बहुव्रीहि ताम् बन्धुताम् बन्धूनां समूहः इति बन्धुता (बन्धु + समूहार्थे तल्)

अलंकार—उत्प्रेक्षा, एकावली।

दुर्योधन के सद्गुणों से प्रेरित होकर इसके तीनों गण (धर्म, अर्थ, काम) मानों मैत्रीभाव को प्राप्त हो गये हैं—

> **असक्तमाराधयतो यथायथम्**
> **विभज्य भक्त्या समपक्षपातया।**
> **गुणानुरागादिव सख्यमीयिवा—**
> **न्न बाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम्॥११॥**

अन्वय—यथायथं विभज्य समपक्षपातया भक्त्या असक्तम् आराधयतः गुणानुरागात् सख्यम् ईयिवान् इव अस्य त्रिगणः परस्परं न बाधते।

शब्दार्थ—यथायथं—यथायोग्य। विभज्य—विभाजन करके। समपक्षपातया —समान पक्षपातपूर्वक। भक्त्या—अनुराग (भाव) से। असक्तम्—अनासक्त भाव से। आराधयत:—सेवन किये जाते हुए। गुणानुरागान्—गुणों में अनुराग के कारण। सख्यम् ईयिवान इव—मानों मैत्रीभाव को प्राप्त करके। परस्परं—आपस में, अस्य त्रिगण:—इसके त्रिगण: (धर्म, अर्थ, काम) न बाधते—बाधा नहीं पहुंचाते हैं।

हिन्दी अनुवाद—यथायोग्य विभाजन करके समान पक्षपातपूर्वक अनुराग (भाव) से, अनासक्तिपूर्वक सेवन किये जाते हुए, (इसके) गुणों में अनुराग के कारण, मानों मैत्रीभाव प्राप्त हुए, इसके त्रिगण (धर्म, अर्थ, काम) आपस में, बाधा नहीं पहुंचाते हैं।

भावार्थ—दुर्योधन धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पुरुषार्थों का समय निर्धारित कर तीनों का उपयोग समान भाव से करता है।

संस्कृत व्याख्या—दुर्योधनेन यथायथं—यथायोग्यं, विभज्य—विभाजनं कृत्वा त्रिवर्ग: (धर्मअर्थकामान्) समपक्षपातया—समभावेन, भक्त्या—(सम) अनुरागेण असक्तम्—अनासक्तभावेन आराधयत:—धर्मार्थकामानुपसेवमानस्य अस्य दुर्योधनस्य—गुणानुरागात्—गुण—पक्षपातात्। सख्यम्—मैत्रीभावम् ईयिवान् इव—सम्प्राप्त: इव त्रिगण:—धर्मार्थकामवर्ग: परस्परम्—अन्योन्यम् न बाधते—न पीडयति। यथायोग्यं धर्मार्थकामसेवनेन स स्वस्य राष्ट्रस्य च उन्नतिं करोति।

व्याकरण—असक्तम्—न सक्त: असक्त: (नञ् तत्पु०) आराधयत:—आ + राध् + शतृ = आराधयत् तस्य। यथायथम्—समपक्षपातया—पक्षे पात: पक्षपात: (सुप्सुपा) सम पक्षपात: यस्याम् तया (बहु०) सख्यम्—सख्युर्भाव: सख्यम् (सखि + य प्रत्यय)। ईयिवान्—इण गतौ + क्वसु त्रिगण:—त्रयाणां धर्मार्थकाममोक्षानां गण:—(षष्ठी तत्पुरुष)

अलङ्कार:—उत्प्रेक्षा, काव्यलिङ्ग।

दुर्योधन निर्वाध साम (दान) प्रयोग प्राय: करता रहता है—

> **निरत्ययं साम न दानवर्जितं**
> **न भूरि दानं विरहय्य सत्क्रियाम्।**
> **प्रवर्तते तस्य विशेषशालिनी,**
> **गुणानुरोधेन विना न सत्क्रिया॥१२॥**

अन्वय—तस्य नित्ययं साम दानवर्जितं न, भूरिदानं सत्क्रियां विरहय्य न, विशेषशालिनीं सत्क्रिया गुणानुरोधेन बिना न प्रवर्तते।

शब्दार्थ—तस्य—उस दुर्योधन का, निरत्ययं—निर्बाध, साम सान्त्ववचन (मधुर वचन), दानवर्चितम्—दान से रहित, न—नहीं (होता), भूरि दानं—प्रचुर दान, सत्क्रियाम्—सत्कार से, विरहय्य—रहित, न—नहीं (होता), विशेषशालिनी—विशेषताओं से समलङ्कृत, सत्क्रिया—सत्कार क्रिया गुणानुरोधेन बिना—गुणयोग्यता के बिना, न प्रवर्तते—नहीं होती है।

हिन्दी अनुवाद—उस दुर्योधन का निर्वाध मधुर वचन दान से रहित नहीं होता है, (उसका) प्रचुर, दाम सत्कार से रहित नहीं होता, (उसकी) विशेषताओं से समलङ्कृत सत्कार किया गुणयोग्यता के (मूल्यांकन) बिना नहीं होती है।

भावार्थ—दुर्योधन जानता है कि लोभी व्यक्तियों को केवल मधुर वचनों के माध्यम से चिरकाल तक आत्मीय नहीं रखा जा सकता है। अतः वह मधुर वचन बोलने के साथ-साथ दान (पुरस्कारादि) भी देता है। परन्तु वह दान अहंभाव एवं तिरस्कार भाव से रहित होकर सम्मान पूर्वक देता है। परन्तु उसका मधुर वचन दान, सम्मान बिना गुणों को परखे हुए अर्थात् गुणी व्यक्ति को ही समुपलब्ध होता है।

संस्कृत-व्याख्या—तस्य—दुर्योधनस्य, निरत्ययं—बाधारहितं, साम—मधुर-वचनम्, दानवर्जितं—दानरहितं, न—न भवति, भूरि—प्रचुरदानं पुरस्कारादि, सत्क्रियाम्—सत्कारक्रियाम् विरहय्य, विरहितं, न-न भवति, विशेषशालिनी—वैशिष्ट्यसमलङ्कृता, सत्क्रिया—सत्कारक्रिया, गुणानुरोधेन विना—गुणयोग्यता मूल्यांकनेन विना—न प्रवर्तते—नं प्रसरति।

व्याकरण—निरत्ययं—निर्गतः अत्ययः अस्मात् (बहुब्रीहि), दानवर्जितं—दानेन वर्जितम् (तत्पुरुष) सत्क्रिया—सतां क्रिया—सत्क्रिया (कर्मधारय), विशेषशालिनी—विशेषेण शालते शोभते इति विशेषशालिनीं वि + शिष् + घञ् भावे (विशेषः) शाल् + णिनि कर्तरि (शालिनी)

अलङ्कारः—एकावली अलंङ्कारः।

दुर्योधन धर्मशास्त्रों में उपदेशित न्याय व्यवस्था के अनुसार ही दण्ड विधान करता है—

> **वसूनि वाञ्छन्न वशी न मन्युना,**
> **स्वधर्म इत्येव निवृत्तकारणः,**
> **गुरूपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा,**
> **निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम्॥१३।**

अन्वय—वशी सः न वसूनि वाञ्छन्, न मन्युना (किन्तु) निवृत्तकारणः (सन्) स्वधर्म इत्येव गुरूपदिष्टेन, दण्डेन रिपौ सुतेऽपि वा धर्मविप्लवं निहन्ति।

शब्दार्थ—वशी—जितेन्द्रिय, सः—वह दुर्योधन, न-न, वसूनि—धन की, वाञ्छन्—अभिलाषा से, न-न, मन्युना—क्रोध से, निवृत्त कारण—(क्रोधकामादि) कारणों से रहित होकर, स्वधर्म इति एवं—'यह मेरा धर्म है' ऐसा मानकर, गुरूपदिष्टेन दण्डेन—गुरु (धर्माधिकारी अथवा शास्त्रानुमोदित) दण्ड व्यवस्था से, रिपौ—शत्रु में, सुतेऽपिवा—अथवा पुत्र में भी, धर्मविप्लवम्—धर्मातिक्रमण को, निहन्ति—निवारण करता है।

हिन्दी अनुवाद—जितेन्द्रिय वह दुर्योधन न धन की अभिलाषा से, न क्रोध से, (अपितु) कारणों से रहित होकर 'यह मेरा धर्म है' ऐसा मानकर गुरु द्वारा बताये गये (धर्माधिकारी अथवा शास्त्रानुमोदित) दण्ड व्यवस्था से शत्रु अथवा पुत्र में भी धर्मातिक्रमण का निवारण करता है।

भावार्थ—दुर्योधन लोभ अथवा क्रोध के वशीभूत होकर किसी भी व्यक्ति को दण्डित नहीं करता अपितु शास्त्रों में उल्लिखित दण्डव्यवस्था को ही राजधर्म समझकर शत्रु अथवा पुत्र में समान भाव से धर्म के उल्लंघन का निवारण करता है।

संस्कृत व्याख्या—वशी—जितेन्द्रयः, सः-दुर्योधनः, न वसूनि—न धनानि, वाञ्छन्—अभिलषन्, न मन्युना—न क्रोधेन, (अपराधिजनान्) दण्डयति, निवृत्तकारणः—क्रोधलोभादि कारणरहितः (सन्) गुरूपदिष्टेन दण्डेन—धर्माधिकारिणा, शास्त्रानुमोदितेन दण्डेन—दण्ड व्यवस्थया, स्वधर्म इत्येव—अयं मम धर्मः इति मत्वा रिपौ—शत्रौ, सुतेऽपि—पुत्रेऽपि, धर्मविप्लवं—धर्मस्य अतिक्रमणं, निहन्ति—निवारयति।

व्याकरण—वशी—वशः अस्ति यस्य (इन्द्रियाणि) वशी, (वश + इति मत्वर्थे) वाञ्छन्—वाञ्छतीति इति वाञ्छन् (वाञ्छ + शतृ) स्वधर्म—स्वस्य

आत्मनः धर्मः कर्त्तव्यम् इति स्वधर्मः, निवृत्तकारणः—निवृत्तं कारणं यस्य सः (बहुब्रीहि), गुरूपदिष्टेन—गुरुणा उपदिष्टः (तृतीया तत्पु०), दण्डेन—दण्ड्यतेऽनेनेति दण्डः तेन, धर्मविप्लवम्—ध्रियतेऽनेनेति धर्म (धृ + म करणे) तस्य विप्लवः (वि + प्लु + अप् भावे षष्ठी तत्पु०)

अलंकार—अनुप्रासः।

अपने सेवकों को कार्यों की समाप्ति होने पर दुर्योधन सम्पत्तियाँ प्रदान करता है—

> **विधाय रक्षान् परितः परेतरा—**
> **न शङ्कितताकारमुपैति शङ्कितः।**
> **क्रियापवर्गेष्वनुजीविसात्कृताः,**
> **कृतज्ञतामस्य वदन्ति सम्पदः ॥१४॥**

अन्वय—शङ्कितः (सन्) परितः परेतरान् रक्षान् विधाय अशङ्किताकारमुपैति। क्रियापवर्गेषु अनुजीविसात्कृताः सम्पदः अस्य कृतज्ञतां वदन्ति।

शब्दार्थ—शङ्कितः—आशंकाग्रस्त होकर भी वह परितः चारों ओर, परेतरान्—आत्मीय, रक्षान्—रक्षकों की विधाय विधान (नियुक्ति) करके अशङ्किताकारमुपैति—शङ्कारहित आकृति को धारण किये रहता है, क्रियापवर्गेषु—(निर्धारित) कार्यों की समाप्ति पर, अनुजीविसात्कृताः सम्पदः—सेवकों के अधीन की सम्पत्तियाँ, अस्य—इस दुर्योधन की, कृतज्ञता वदन्ति—कृतज्ञता को सूचित करती हैं।

हिन्दी अनुवाद—(पाण्डुपुत्रों अर्जुनादि से पराजय की) आशंकाग्रस्त होने पर भी (राज्य के) चारों ओर आत्मीय रक्षकों का विधान (नियुक्ति) करके शंकारहित आकृति को धारण किये रहता है। (निर्धारित) कार्यों की समाप्ति पर (पुरस्कार स्वरूप प्राप्त) सेवकों के अधीन की सम्पत्तियाँ इस दुर्योधन के (प्रति) कृतज्ञता को सूचित करती हैं।

भावार्थ—यद्यपि दुर्योधन अर्जुन से भविष्य में संभावित पराजय की शंका से ग्रस्त रहता है, लेकिन राज्य में चतुर्दिक् विश्वसनीय गुप्तचरों को नियुक्त करके शंकारहित आकृति को धारण कियें रहता है। तात्पर्य यह है उसके मुख पर पाण्डुपुत्रों से भयभीत होने का भाव परिलक्षित नहीं होता है। विशिष्ट कार्यों के सम्पन्न करने वाले गुप्तचरों एवं सेवकों को पुरस्कार स्वरूप सम्पत्तियाँ प्रदान करता है, जिससे वे सेवक कृतज्ञ रहते हैं।

संस्कृत व्याख्या—शंकितः—शंकायुक्तः (अपि) परितः राज्यस्य सर्वासु दिक्षुं परेतरान्—आत्मीयान्, रक्षान्—रक्षकान् विधाय—नियुज्य, अशङ्कितः —शंकारहितः आकारः—स्वरूपं, उपैति—धारयति, लोके सर्वशङ्कारहितम् इव प्रदर्शयति। क्रियापवर्गेषु—कार्यावसानेषु, अनुजीविसात्कृताः—भृत्याधीनाः कृताः सम्पदः—बहुविधपारितोषिकादिसम्पत्तयः, अस्य—दुर्योधनस्य कृतज्ञतां—स्वोपकारित्वं, वंदन्ति—सूचयन्ति।

अलङ्कार—अनुप्रासः।

उपादेय वस्तुओं में दुर्योधन के द्वारा प्रयुक्त किये गये सामादि उपाय अर्थ सम्पत्तियों को फलीभूत करते हैं—

> **अनारतं तेन पदेषु लम्भिता,**
> **विभज्य सम्यग्विनियोगसत्क्रिया।**
> **फलन्त्युपायाः परिवृंहितायती,—**
> **रुपेत्य संघर्षमिवार्थसम्पदः ॥१५॥**

अन्वय—तेन पदेषु सम्यक् विभज्य विनियोगसत्क्रिया लम्भिताः उपायाः संघर्षमुपेत्य इव परिवृंहितायती अर्थसम्पदः निरन्तरं फलन्ति।

शब्दार्थ—तेन, दुर्योधन के द्वारा, पदेषु—उपादेय वस्तुओं में, सम्यक् विभज्य उचित विभाजन करके, विनियोग सत्क्रिया—समुचित प्रयोगरूपी सत्कार अर्थात् अपने अपने उचित स्थानों पर इनको प्रयोग करके मानो इनका सत्कार किया गया हो, लम्भिता-प्राप्त कराये गये, उपाया-सामादिक उपाय, संघर्षम् उपेत्य इव—मानो पारस्परिक स्पर्धा को प्राप्त होकर, परिवृंहितायती चिरकाल तक सुस्थिर भविष्य वाली, अर्थसम्पदः—धनधान्यादि समृद्धियाँ अनारतं—निरन्तर, फलन्ति—फलती हैं।

हिन्दी अनुवाद—दुर्योधन के द्वारा उपादेय वस्तुओं में उचित विभाजन करके समुचित प्रयोगरूपी सत्कार को प्राप्त कराये (सामादिक) उपाय मानो पारस्परिक स्पर्धा को प्राप्त होकर चिरकाल तक सुस्थिर भविष्य वाली धनधान्यादि समृद्धियाँ निरन्तर फलित करते हैं (उत्पन्न करते हैं)।

संस्कृत व्याख्या—तेन—दुर्योधनेन, पदेषु—उपादेयवस्तुषु, सम्यक्, उचितरूपेण, विभज्य—विभागं कृत्वा, विनियोगसत्क्रिया—समुचित स्थानेषु प्रयोगसत्कारानि, लम्भिता—सम्प्राप्ताः, उपायाः सामादिक उपायाः, संघर्षमुपेत्य इव—पारस्परिक—स्पर्धाम् प्राप्य इव, परिवृंहिता—परिवर्धिताः, आयति।

उत्तरकाल: चिरकालपर्यन्तम् स्थिरा: अर्थसम्पद्—धनधान्यादि सम्पत्ती: अनारतं—निरन्तरं फलन्ति—फलीभूतं भवन्ति।

व्याकरण—पदेषु—पदं वस्तु तेषु, लम्भिता—लञ् + णिच् + क्त कर्मणि—लम्भिता:, विनियोग सत्क्रिया—विनियोग: एव सत्क्रिया: (कर्मधारय) अथवा विनियोग: सत्क्रिया यासां ता: (बहुब्रीहि), परिवृंहिता आयति: यासां ता: (बहुब्रीहि)

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

दुर्योधन के वैभव का वर्णन करते हैं—

> **अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलं,**
> **तदीयमास्थाननिकेतनाजिरम्।**
> **नयत्ययुग्मच्छदगन्धिरार्द्रतां,**
> **भृशं नृपोपायनदन्तिनां मदः ॥१६॥**

अन्वय—अयुग्मछदगन्धि नृपोपायनदन्तिनां मद: अनेक राजन्यरथाश्वसङ्कुलं तदीयम् आस्थाननिकेतनाजिरम् भृशमार्द्रतां नयति।

शब्दार्थ—अयुग्मछदगन्धि—सप्तपर्ण (वृक्ष) के पुष्पगन्ध के समान गन्ध वाला, नृपोपायनदन्तिनां—राजाओं के उपहार स्वरूप हाथियों का, मद: —मदजल, अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलम्—अनेक राजाओं के रथों एवं घोड़ों से भरे हुए, तदीयम्, दुर्योधन के, आस्थाननिकेतनाजिरम्—सभाभवन के आँगन को, भृशमार्द्रतां—अत्यधिक आर्द्र बनाये रहता है।

हिन्दी अनुवाद—सप्तपर्ण (वृक्ष) के पुष्पगन्ध के समान गन्ध वाला, राजाओं के उपहारस्वरूप हाथियों का मदजल, अनेक राजाओं के रथों एवं घोड़ों से भरे हुए दुर्योधन के सभाभवन के आँगन को अत्यधिक आर्द्र बनाये रहता है।

भावार्थ—दुर्योधन के सभा भवन का आँगन दर्शनार्थ आये हुए अधीनस्थ राजाओं के रथों एवं घोड़ों से भरा रहता है। अधीनस्थ राजाओं के द्वारा दिये गये उपहारस्वरूप हाथियों का मदजल आँगन को गीला कर देता है। हाथियों के मदजल की सुगन्ध सप्तपर्ण के वृक्ष पुष्प के समान होती है।

संस्कृत व्याख्या—अयुग्धछदगन्धि:—सप्तपर्णपुष्पपरिमलेन, नृपोपायन-दन्तिनां मद:-महीपालउपहारलब्धानां गजानां मदजलेन, अनेकाराजन्य रथाश्वसंकुलम्—दर्शनार्थ समागता: क्षत्रियाणाम् राजपुत्राणाम् रथै: तुरगैश्च

परिव्याप्तं तदीयमास्थाननिकेतनाजिरम्-दुर्योधनस्य सभाभवनस्य प्राङ्गणम् भृश-अत्यधिकं, आर्द्रताम्-पङ्किलतां, नयति-प्राप्नोति।

व्याकरण—अयुग्मछदगन्धिः-न युग्मः अयुग्मः (नञ् समास) अयुग्माः छदाः पत्राणि अस्य इति अयुग्मच्छदः (बहु० समास) अयुग्म (पुष्पस्य) गन्धः इव गन्धः अस्य इति अयुग्मछदगन्धि (बहुब्रीहि) नृपोपायनदन्तिनःम्-प्रशस्तौ दन्तौ एषां स्तः इति दन्तिनः उपायनानि एव दन्तिनः इति उपायनदन्तिनः (कर्मधारय) नृपाणाम् उपायनदन्तिनः (ष० तत्पु०) तेषाम् अनेक राजन्यरथाश्वसंकुलम् -न एके अनेके (नञ् स०) तेषाम् राज्ञः अपत्यानि इति राजन्याः रथाश्च अश्वाश्च रथाश्वम् (द्वन्द) अनेक राजन्यानाम् रथाश्वम् तैः संकुलम्, तदीयम् - तस्य इदम्: तदीयम् (तद् + छ) आस्थान -निकेतनम् - आस्थीय-तेऽस्मिन् इति आस्थानम् (आ + स्था + ल्युट्) निकित्यतेऽस्मिन् इति निकेतनम् (नि + कित् + ल्युट) आस्थानस्य निकेतनम् - आस्थाननिकेतनम्।

अलंकार—उदात्त अलंकार।

अपने राज्य को समृद्धिशाली बनाने में दुर्योधन के द्वारा किए जा रहे प्रयत्नों का वर्णन किया जा रहा है—

सुखेन लभ्या दधतः कृषीबलै -
रकृष्टपच्या इव सस्यसम्पदः।
वितन्वति क्षेममदेवमातृका -
श्चिराय तस्मिन् कुरवश्चकासति॥ १७॥

अन्वय—चिराय तस्मिन् क्षेमं वितन्वति अदेवमातृकाः कुरवः अकृष्टपच्या इव कृषीवलैः सुखेन लभ्याः सस्यसम्पदः दधतः चकासति।

शब्दार्थ—चिराय - दीर्घकाल तक, तस्मिन् - उस दुर्योधन के, क्षेमम्-(प्रजा का) मंगल वितन्वति - करने पर अदेवमातृकाः - मेघों के जल की अपेक्षा न रखने वाला, कुरवः—कुरुप्रदेश, अकृष्टपच्या - बिना जोती गई भूमि पर पकने वाली की तरह, कृषीवलैः - कृषकों को, सुखेन लभ्या - अनायास ही प्राप्त होने वाली, सस्यसम्पदः - धान्यादि सम्पत्तियों को, दधतः - धारण करता हुआ, चकासति - सुशोभित हो रहा है।

हिन्दी अनुवाद—दीर्घकाल तक उस दुर्योधन के द्वारा मंगलकारी कार्यों के करते रहने पर मेघों के जल की अपेक्षा न रखने वाला कुरु प्रदेश बिना जोती

गई भूमि पर पकने वाली की तरह कृषकों को अनायास ही प्राप्त होने वाली धान्यादि सम्पत्तियों को धारण करता हुआ सुशोभित हो रहा है।

भावार्थ—दुर्योधन प्रजा मंगल के लिए दीर्घकाल से नहर, तालाब, कूप आदि का निर्माण करवा कर सिंचाई व्यवस्था कर रहा है। इसलिए फसल उगाने में किसानों को कठिनाई नहीं होती। फसल मानो अनायास ही प्राप्त हो जाती है। अतः कुरुदेश मेघों के जल पर आश्रित नहीं है।

संस्कृत व्याख्या—चिराय - दीर्घकालपर्यन्तम्, तस्मिन् - दुर्योधने, क्षेमं वितन्वति - प्रजामंगलं कुर्वति सति, अदेवमातृकाः - वर्षाजल-अनाश्रिताः कुरवः - कुरु प्रदेशः अकृष्टपच्या इव - बिना कर्षणेन एव स्वयमाविर्भूय पच्यमाना इव- कृषीवलैः - कृषकैः सुखेन - अनायासेन लभ्याः - प्राप्तियोग्याः सस्यसम्पदः-धान्यादिसम्पत्तौ दधतः - धारयन्तः चकासति - सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते।

व्याकरण—कृषीवलैः - कृषिः अस्ति एषाम् इति कृषीवलाः (कृषि + वलच्), अकृष्टपच्या - कृष्टेन कर्षणेन पच्यन्ते कृष्टपच्या, न कृष्टपच्या इति अकृष्टपच्या, अदेवमातृकाः देवः वृष्टिरूपो देवः येषां ते (बहुब्रीहि समास) न देवमातृकाः अदेवमातृकाः (नञ् समास)।

दुर्योधन के सद्गुणों से द्रवीभूत होकर पृथ्वी मानों स्वयं ही उसको सम्पत्ति प्रदान करती है—

उदारकीर्तेरुदयं दयावतः,
प्रशान्तबाधं दिशतोऽभिरक्षया।
स्वयं प्रदुग्धेऽस्य गुणैरुपस्नुता,
वसूपमानस्य वसूनि मेदिनी॥ १८॥

अन्वय—उदारकीर्तेः दयावतः, प्रशान्तबाधम् अभिरक्षया उदयं दिशतः वसूपमानस्य अस्य गुणैः उपस्नुता मेदिनी वसूनि स्वयं प्रदग्धे।

शब्दार्थ—उदारकीर्ते-महायशस्वी, दयावतः - दयावान, प्रशान्त-बाधम् - निर्विघ्न, अभिरक्षया - (चतुर्दिक) संरक्षा द्वारा, उदयं - अभ्युदय को दिशतः - सम्पादिक करने वाले, वसूपमानस्य - कुबेर के समान, अस्य गुणैः- इस दुर्योधन के सद्गुणों से, उपस्नुता मेदिनी - द्रवित हुई वसुन्धरा, स्वयं - स्वयं ही सम्पदाओं को दुह देती है। प्रदान करती है।

हिन्दी अनुवाद—महायशस्वी, दयावान, निर्विघ्न (चतुर्दिक) संरक्षा द्वारा अभ्युदय को सम्पादित करने वाले कुबेर के समान इस दुर्योधन के सद्गुणों से

द्रवित हुई वसुन्धरा स्वयं ही सम्पदाओं को दुह देती है अर्थात् सम्पत्ति प्रदान करती है।

भावार्थ—जिस प्रकार गौ अपने बच्चे के प्रेम से द्रवीभूत होकर दूध दे देती है उसी प्रकार पृथ्वी दुर्योधन के गुणों एवं प्रेम के कारण मानों सम्पत्ति स्वयं सुलभ कराती है।

संस्कृत-व्याख्या—उदारकीर्तेः महायशसः दयावतः - दयालोः प्रशान्तबाधम् - निर्विघ्नम्, अभिरक्षया - सार्वत्रिक संरक्षया, उदयं - अभ्युदयं दिशतः - सम्पादयतः वसूपमानस्य - कुबेरसदृशस्य, अस्य गुणैः - दुर्योधनस्य सद्गुणैः, उपस्नुता मेदिनी - द्रवीभूता पृथिवी, वसूनि - धनानि, स्वयं प्रदुग्धे-स्वयमेव विमुञ्चति।

व्याकरण—उदारकीर्तेः - उदारा कीर्तिः यस्य सः (बहुब्रीहि स०) प्रशान्तवाधम् - प्रशान्ता वाधा यस्मिन् सः (बहुब्रीहि) दिशतः - दिश् + शतृ = दिशम् तस्य अभिरक्षया - अभि + रक्ष + अ भावे - तया, उपस्नुता - उप + स्नु + क्त कर्मणि, वसूपमानस्य - वसुः कुबेरः उपमानं यस्य तस्य (बहुव्रीहि)

अलंकारः—समासोक्ति।

दुर्योधन के सैनिक प्राण देकर भी उसका हित सम्पन्न करना चाहते हैं—

महौजसो मानधना धनर्चिता
धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्तयः।
न संहता तस्य नभिन्नवृत्तयः,
प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम्।।१९।।

अन्वय—महौजसः मानधना धनर्चिताः संयति लब्धकीर्तयः नसंहता नभिन्नवृत्तयः धनुर्भृतः असुभिः तस्य प्रियाणि समीहितुं वञ्छिन्ति।

शब्दार्थ—महौजसः - महाबलशाली, मानधना - सम्मानरूपी धन वाले, धनार्चिता - धन से सम्मानित, संयति - सङ्ग्राम में, लब्धकीर्तयः - यश प्राप्त करने वाले, न संहता - (स्वार्थसिद्धि के लिए परस्पर) संगठित न होने वाले, न भिन्नवृत्तयः - (परस्पर) अविरुद्ध व्यवहार वाले, धनुर्भृतः - धनुर्धारी योद्धा, असुभिः - प्राणपण से, तस्य - दुर्योधन के, प्रियाणि - प्रिय, समीहितुं - करने के लिए ; वाञ्छन्ति - इच्छा करते हैं।

हिन्दी अनुवाद—महाबलशाली, सम्मानरूपी धन वाले, धन से सम्मानित, सङ्ग्राम से यश प्राप्त करने वाले, (स्वार्थ सिद्धि के लिए परस्पर), संगठित न

होने वाले, (परस्पर) अविरुद्ध व्यवहार वाले, धनुर्धारी योद्धा, प्राणपण से दुर्योधन का प्रिय करने की इच्छा करते हैं।

भावार्थ—दुर्योधन के सैनिक न केवल महाबलशाली हैं अपितु स्वाभिमानी हैं। वे धन के द्वारा खरीदे नहीं जा सकते हैं क्योंकि उनको राज्य की ओर से धन से सम्मानित किया जाता है। अतः वे प्राण देकर भी दुर्योधन के अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करना चाहते हैं।

संस्कृत व्याख्या—महौजसः - महाशक्तिशालिनः मानधनाः - स्वाभिमानिनः, धनार्चिता - धनदानपुरस्कारादिभिः सम्मानिताः, संयति - सङ्ग्रामे, लब्धकीर्तयः - प्राप्तयशसः, नसंहता - स्वार्थसिद्ध्यर्थं मिथः सङ्गता - नभिन्नवृत्तयः, इतरेतरअविरोधिनः (परस्पर स्पर्धारहिताः) धनुर्भृतः - धनुर्धारिणः, तस्य - दुर्योधनस्य प्रियाणि - अभीष्टकार्याणि, समीहितुम्- कर्तुम्, वाञ्छन्ति - इच्छन्ति।

संस्कृत व्याकरण—महौजसः - महतः ओजः येषां ते (बहुब्रीहि) मानधनाः - मानः एव धनं येषां ते (बहुब्रीहि) धनर्चिता - धनेन अर्चिताः, धनुर्भृतः - धनूंषि बिभ्रति धनुर्भृताः, संयति - संयत् - तस्यां संयति, लब्धकीर्तयः - लब्धाः कीर्ति येषां ते लब्धकीर्तयः (बहुव्रीहि समा०) न संहता - नसंहता - संहता मिथः संगता (स्वार्थाय) न संहता इति नसंहता (सुप्सुपा समास), न भिन्नाः वृत्तिः येषां ते भिन्नवृत्तयः न भिन्नवृत्तयः - भिन्नवृत्तयः सुप्सुपा समास, प्रियाणि - प्रीणन्ति इति प्रियाणि तानि, समीहितुम् - सम् + ईह + तुमुन् , वाञ्छन्ति - वाञ्छ + लट् अन्ति।

दुर्योधन अपने अधीनस्थ राजाओं तथा शत्रुओं के क्रियाओं, आचरण तथा मानसिक भावों को गुप्तचरों के द्वारा जान लेता है—

महीभृतां सच्चरितैश्चरैः क्रियाः,
स वेद निःशेषमशेषितक्रियः।
महोदयैस्तस्य हितानुबन्धिभिः,
प्रतीयते धातुरिवेहितं फलैः। २०॥

अन्वय—अशेषितक्रियः स सच्चरितैः चरैः महीभृतां क्रियाः निःशेषं वेद। धातुरिव तस्य महोदयैः हितानुवन्धिभिः फलैः प्रतीयते।

शब्दार्थ—अशेषितक्रियः - समस्त राजकार्यों को समाप्त कर लेने वाला, सः - दुर्योधन, सच्चरितै - शुद्ध चरित वाले, चरैः - गुप्तचरों द्वारा, महीभृतां -

राजाओं के, क्रिया - कृत्यों को, निश्शेषम् - सम्पूर्ण रूप से, वेद - जानता है, धातुरिव - विधाता की भाँति, तस्य - उस दुर्योधन की, ईहितम् - चेष्टा को, इष्ट कार्य को, महोदयैः महती उन्नतिवाली, हितानुबन्धिभिः - कल्याणकारी फलैः, फलों से, प्रतीयते - प्रतीत होता है।

हिन्दी अनुवाद—समस्त राजकार्यों को समाप्त कर लेने वाला दुर्योधन, शुद्ध चरित वाले गुप्तचरों द्वारा, राजाओं के कृत्यों को सम्पूर्ण रूप से जानता हैं। विधाता की भाँति उस दुर्योधन की चेष्टा को (इष्ट कार्य को) महान उन्नतिवाले कल्याणकारी फलों से जाना जाता है।

भावार्थ—सम्पूर्ण आवश्यक राजकार्यों को समाप्त कर लेता है तथा अपने अधीनस्थ राजाओं अथवा शत्रुओं के कार्यकलापों एवं अपने प्रति उनके मानसिक भावों को निर्लोभी गुप्तचरों द्वारा जान लेता है। प्रजा को दुर्योधन की योजनाओं एवं कार्यों की सूचना कार्यों के सम्पूर्ण हो जाने पर ही पता चलता है।

संस्कृत व्याख्या—अशेषितक्रियः - समापितः सकलशासनकृत्यः, सः - दुर्योधनः, सच्चरितैः - शुद्धचरितैः, चरैः - गुप्तचरैः - महीभृतां - महीपालानां, क्रियाः - कार्याणि, निश्शेषम् - सम्पूर्णम्, वेद - विजानाति, धातुरिव - ब्रह्मा इव, तस्य - दुर्योधनस्य, ईहितम् - सङ्कल्पाः उद्योगाः वा, महोदयैः - महती उन्नतिसम्पन्नेः , हितानुबन्धिभिः कल्याणयुक्तैः, फलैः प्रतीयते - अनुमीयते ज्ञायते वा।

व्याकरण—महीभृताम् - मही बिभ्रति इति महीभृत- तेषाम् (उपपद तत्पु०), सच्चरितैः - सत् चरित् येषां तैः (बहुब्रीहि), चरैः - चरन्तीति चराः तैः, वेद - विद् + लट् तिप् । निःशेषम् निर्गतः शेषो यस्मात तत् यथा स्यात्तथा (बहुब्रीहि) अशेषितक्रियः न शेषिताः अशेषिताः (नञ् समास) अशेषिताः क्रियाः येन सः अशेषितः क्रियः (बहुव्रीहि), सच्चरितैः - शुद्धचरितैः अवञ्चकैः इत्यर्थः, वेद वेत्ति (विद् + तिप्) वेद, महोदयैः - महान् उदयः येभ्यः तैः (बहुब्रीहि) हितानुबन्धिभिः - हितम् अनुबध्नन्ति इति हितानुबन्धीनि (उपपद तत्पुरुष) ईहितम् -ईह् चेष्टायाम् + क्त, धातुः - दधातीति धाता (धा + तृच) तस्य, प्रतीयते - प्रति + इ + लट् त कर्मणि।

अलंकार—उपमा।

दुर्योधन की आज्ञा का पालन प्रजा अति श्रद्धा भाव से करती है—

न तेन सज्यं क्वचिदुद्यतं धनुः,
कृतं न वा कोपविजिह्ममाननम्।
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते,
नराधिपैः माल्यमिवास्य शासनम्॥ २१॥

अनन्य—तेन क्वचिद् सज्यं धनुः न उद्यतम्, आननं वा कोपविजिह्म न कृतम्, गुणानुरागेण नराधिपैः अस्य शासनं माल्यमिव शिरोभिः उह्यते।

शब्दार्थ—तेन - दुर्योधन ने, क्वचिद् - कभी भी, सज्यं - प्रत्यञ्चा (डोरी) सहित, धनुः - धनुष, न उद्यतम् - नहीं उठाया, आननं वा, अथवा मुख को कोपविजिह्मं - क्रोध के कारण कुटिल (विकृत), न कृतम् - नहीं किया, गुणानुरागेण - (उसके) गुणों में अनुराग के कारण, नराधिपैः - राजाओं के द्वारा, अस्य शासनं - इसकी आज्ञा, माल्यमिव - माला की भाँति, शिरोभिः उह्यते -. शिरोधार्य की जाती है।

हिन्दी अनुवाद—दुर्योधन ने कभी भी प्रत्यञ्चा (डोरी) सहित धनुष नहीं उठाया, अथवा मुख को क्रोध के कारण कुटिल (विकृत) नहीं किया, (उसके) गुणों में अनुराग के कारण राजाओं के द्वारा, इसकी आज्ञा, माला की भाँति शिरोधार्य की जाती है।

भावार्थ—सभी अधीनस्थ राजा गुणानुरागवश श्रद्धाभाव से दुर्योधन की आज्ञा को उसी प्रकार शिरोधार्य करते हैं, जिस प्रकार माला प्रसन्नता के साथ सिर झुका कर शिरोधार्य की जाती है। इसलिए कभी भी दुर्योधन को न तो धनुष उठाना पड़ा, न ही क्रोध करना पड़ा।

संस्कृत व्याख्या—तेन दुर्योधनेन, क्वचिद् - कुत्रापि, सज्यं - प्रत्यञ्चालग्नम्, धनुः - शरासनम्, न उद्यतम् - नोर्ध्वीकृतम्, आननं वा - मुखमपि, कोपविजिह्मं-क्रोधकुटिलं, न कृतम् - न विहितम्, गुणानुरागेण - गुणानुरोगण - गुणप्रेम्णा, अस्य - दुर्योधनस्य, शासनं - आज्ञाम् माल्यमिव - पुष्पमाला इव, शिरोभिः उह्यते - शिरोभिः उत्तमाङ्गैः वा धार्यते।

व्याकरण—सज्यम् - ज्यया सह वर्तते इति सज्यं (बहुब्रीहि), कोप विजिह्म् - विशेषेण जिह्मं विजिह्मं कोपेन विजिह्मं (तृ० तत्पुरुष) गुणानुरागेण - गुणेषु अनुरागेण, (सप्तमी तत्पु०) नराधिपैः - नराणाम् अधिपैः (षष्ठी तत्पु०), शासनम् - शास् + ल्युट्, माल्यम् - माला एव माल्यम् (माला + ष्यञ्) **अलंकार**—उपमा।

दुर्योधन दु:शासन को राज्यभार सौंप कर यज्ञ आदि धार्मिक कार्यों को करता रहता है—

> स यौवराज्ये नवयौननोद्धतं
> निधाय दु:शासनमिद्धशासनः।
> मखेष्वखिन्नोऽनुमतः पुरोधसा,
> धिनोति हव्येन हिरण्यरेतसम्॥ २२॥

अन्वय—इद्धशासनः सः नवयौवनोद्धतं दु:शासनं यौवराज्ये निधाय पुरोधसा अनुमतः अखिन्नः मखेषु हिरण्यरेतसं धिनोति।

शब्दार्थ—इद्धशासनः - अप्रतिहत (अनुल्लंघनीय) आज्ञा वाला - सः दुर्योधन नवयौवनोद्धतम् - अभिनव यौवन (नई युवावस्था) के कारण उद्दण्ड दु:शासनं - दु:शासन को, यौवराज्ये - युवराज के कर्म में, निधाय, नियुक्त करके, पुरोधसा अनुमतः - पुरोहित से अनुमति पाकर, अखिन्नः - आलस्यरहित होकर, मखेसु - यज्ञों में, हव्येन - हवि सामग्री के द्वारा, हिरण्यरेतसम् - अग्निदेव को, धिनोति - प्रसन्न करता है।

हिन्दी अनुवाद—अप्रतिहत (अनुल्लंघनीय) आज्ञा वाला दुर्योधन अभिनव यौवन (नई अवस्था) के कारण उद्दण्ड दु:शासन को युवराज के कर्म में नियुक्त करके पुरोहित से अनुमति पाकर आलस्य रहित होकर यज्ञों में हवि सामग्री के द्वारा अग्निदेव को प्रसन्न करता है।

भावार्थ—अनुल्लंघनीय आज्ञा वाला अर्थात् जिसकी आज्ञा का उल्लंघन कोई भी न कर सकता हो, वह दुर्योधन नई युवावस्था के कारण दुर्धर्ष-दु:-शासन को राज्य का योग-क्षेम वहन करने में सक्षम मानकर, उसको युवराज पद पर अभिषिक्त कर स्वयं हविष्यान्न द्वारा अग्निदेव को प्रसन्न कर देवार्चन में संलग्न रहता है जिससे देवगण भी उसके अभीष्ट साधन में सहायता प्रदान करें।

संस्कृत व्याख्या—इद्धशासनः - अप्रतिहाज्ञः, सः - दुर्योधनः, नवयौवनोद्धतम्-अभिनवयौवनेन प्रगल्भस्वभावं, दु:शासनम् - स्वानुजं दु:शासनम् , यौवराज्ये - युवराजकर्मणि, निधाय - नियुज्य - पुरोधसा अनुमतः - पुरोहितेन अनुमोदनमवाप्य, अभिन्नः - अविश्रान्तः निरलसः वा मखेषु - यज्ञेषु, हव्येन - हविष्यान्नप्रदानेन, हिरण्यरेतसम् - अग्निदेवं, धिनोति - प्रीणयति।

व्याकरण—यौवराज्ये - युवा चासौ राजा चेति युवराजः (कर्मधारय) तस्य कर्म इति यौवराज्यम् (युवराज + ष्यञ्) तस्मिन्, इद्धशासन - शिष्यते इति शासनम् (शास् + ल्यूट) इद्ध (इन्ध + क्त) शासनं यस्य सः (बहुव्रीहि), नवयौवनोद्धम् - यूनो भावः यौवनम् (युवन् + अण्) नवं च यौवनम् नवयौवनम् (कर्मधारय) तेन उद्धतः, दुःशासनम्-दुःखेन शास्यते दुःशासनः तम्, पुरोधसा - पुरः धत्ते धीयते वा इति पुरोधाः तेन, हिरण्यरेतसम् - हिरण्यं रेतो यस्य स हिरण्यरेताः (बहुव्रीहि) तम्।

अलङ्कार—अनुप्रास।

इतनी सुदृढ़ व्यवस्था के पश्चात् भी दुर्योधन पाण्डुपुत्रों से भयग्रस्त रहता है—

> **प्रलीनभूपालमपि स्थिरायति.**
> **प्रशासदावारिधि मण्डलं भुवः।**
> **स चिन्तयत्येव भियस्त्वदेष्यती,** भियस्त्वदेष्यती
> **रहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता॥ २३॥**

अन्वय—सः प्रलीनभूपालम् स्थिरायति आवरिधि भुवः मण्डलं प्रशासत् अपि त्वत् एष्यती भियः चिन्तयति एव, अहो बलवद्विरोधिता दुरन्ता।

शब्दार्थ—सः - वह दुर्योधन, प्रलीनभूपालम्-(शत्रु) राजाओं के समाप्त हो जाने पर अर्थात् जिसके सभी शत्रु राजा नष्ट हो चुके हैं, स्थिरायति - दीर्घकाल तक सुस्थिर भविष्य वाले, आवारिधि - समुद्रपर्यन्त, भुवः मण्डलं - भूमण्डल पर, प्रशासत् अपि - प्रशासन करता हुआ भी, त्वत् - आप से एष्यती - आने वाले, भियः, भय को, विपत्ति को, चिन्तयति एव - चिन्ता करता ही है, अहो - खेद की बात है, बलवद्विरोधिता दुरन्ता- बलवान (शत्रु) के साथ विरोध अन्त में दुःखद होता है।

हिन्दी अनुवाद—वह दुर्योधन (शत्रु) राजाओं के समाप्त हो जाने पर दीर्घकाल तक सुस्थिर भविष्य वाले समुद्रपर्यन्त भूमण्डल पर प्रशासन करता हुआ भी आपकी ओर से आने वाले भय (विपत्ति) की चिन्ता करता ही है। खेद की बात है कि बलवान शत्रु के साथ विरोध, अन्त में, दुःखद होता है।

भावार्थ—दुर्योधन निष्कण्टक, समृद्धिशाली एवं शक्तिशाली राज्य पर समुद्र तक फैली हुई सीमाओं वाले अति विस्तृत-राज्य पर शासन कर रहा है। परन्तु पाण्डुपुत्रों के सम्भावित आक्रमण के कारण भयग्रस्त होकर अपने मन में

भीतर ही भीतर व्याकुल रहता है। सत्य ही है कि शक्तिशाली से वैरभाव करने का परिणाम अनिष्टकारक होता है।

संस्कृत व्याख्या—सः - दुर्योधन, प्रलीनाः - तिरोहिताः, भूपालाः - शत्रुरूप -महीपालाः; स्थिरायति - चिरस्थिरउत्तरकालः (भविष्यकाल), आवारिधि - आसमुद्रम्, भुवः मण्डलः - भूचक्रं, प्रशासन् - आज्ञापयन्नापि, त्वत् - भवत्सकाशात्, एष्यती - आगमिष्यतीः, भियः - विपदः, चिन्तयति एव - (मनसि) विचारयति एव, अहो - खेदप्रङ्गोऽयम् बलवद्विरोधिता - प्रबलैः शत्रुभिः सह विरोधभावः दुरन्ता - दुष्परिणामशाली भवति।

व्याकरण—प्रलीनभूपालम्- प्रलीनाः भूपालाः - यस्मिन् तत् (बहुव्रीहि) भुवं पालयन्तीति भूपालाः, स्थिरायतिः - स्थिराः आयतिः यस्य तत् (बहुव्रीहि) आवारिधि - वारि धीयतेऽस्मिन् इति वारिधिः वारिधेः आ आवारिधिः, अव्ययीभाव, त्वदेष्यती - त्वत् एष्यती (आ + इ + युधिष्ठिर) (सुप्सुपा) ताः दुरन्ताः - दुः दुष्टः अन्तः यस्याः सा (बहुव्रीहि) बलवद्धिरोधिता - बलमस्ति अस्य इति बलवान् (बल + मतुप्) विरुणद्धि इति (वि + रुध् + णिनि कर्तरि) विरोधी, तस्य भाव विरोधिता) विरोधिन्+ तल स्त्रियाम्) बलवता विरोधिता बलवद्धिरोधिता (सुप्सुपा समास)

अलंकार—अर्थान्तरन्यासः

युधिष्ठिर सुनने मात्र से ही दुर्योधन का मुखण्डल निस्तेज होकर भयाक्रान्त हो जाता है।

> **कथाप्रसंगेन जनैरुदाहृता -**
> **दनुस्मृ ताखण्डलसूनुविक्रमः।**
> **तवाभिधानाद् व्यथते नताननः**
> **सुदुःसहान्मन्त्रपदादिवोरगः॥ २४॥**

अन्वय—कथाप्रसंगेन जनैः उदाहृतात् तव अभिधानात् (अनुस्मृताखण्डलसुनुविक्रमः) सुदुःसहात् मन्त्रपदात् (अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रम) उरगः इव नताननः सन् व्यथते।

शब्दार्थ—कथाप्रसंगेन - (दुर्योधन के पक्ष में) वार्तालाप में प्रसङ्गवश उरग (सर्प) पक्ष में कथा प्रसङ्ग का अर्थ, विश्वकोष के अनुसार विषवैद्य भी होता है—"कथा प्रसङ्गो वार्तायां विषवैद्ये च वाच्यवत्" श्रेष्ठविषवैद्य के मंत्र पाठ से भयंकर सर्प का तीक्ष्ण विष भी ... हो जाता है। जनैः - (वहाँ

पर उपस्थिति) लोगों के द्वारा उदाहृतात् - उच्चारित, तव अभिधानात् - (दुर्योधन के पक्ष में) तुम्हारे नाम से (अभिधान का यहाँ अर्थ नाम है, अमरकोष के अनुसार - आख्यानेभिदानञ्च नामेधेयञ्च नाम च) (सर्प पक्ष में) तव के 'त' का तात्पर्य है तार्क्ष्य, तव के 'व' का तात्पर्य है - वासुकि, नाम के एक भाग का उच्चारण करने से सम्पूर्ण नाम का ग्रहण हो जाता है, जैसा कि कहा गया है - 'नामैकदेशग्रहणं नाममात्र ग्रहणम्' इसी न्याय से 'तव' के 'त' का तात्पर्य है तार्क्ष्य और 'व' का तात्पर्य है वासुकि अर्थात् तार्क्ष्य (गरुड़) और वासुकि नामक महासर्पो के नामोच्चारण से, अनुस्मृताखण्डल-सूनुविक्रमः -(दुर्योधन के पक्ष में) आखण्डल-इन्द्र, सूनु-पुत्र अर्थात् अर्जुन के पराक्रम का स्मरण करके, सूनु का तात्पर्य पुत्र भी होता है तथा अनुज (छोटा भाई भी होता है)। (सूनुः - पुत्रेऽनुजे रवौ इति विश्वकोषः) दुर्योधन के पक्ष में सूनु का अर्थ होगा पुत्र, सर्प के पक्ष में आखण्डल - इन्द्र के सुनु अर्थात् अनुज (छोटे भाई) विष्णु - वि=पक्षी गरुड़ के क्रम - पादविक्षेप का स्मरण करके, उरगः - सर्प की भाँति, दुःसहात्-अतिदुःसह, मन्त्रपदात् - मंत्रपदों के द्वारा, नताननः -अधोमुख होकर, व्यथते- पीड़ित होता है।

हिन्दी अनुवाद—वार्तालाप में प्रसङ्गवश (वहाँ पर उपस्थित) लोगों के द्वारा उच्चरित हुए तुम्हारे (युधिष्ठिर के) नाम से इन्द्रपुत्र अर्जुन के पराक्रम का स्मरण करके (दुर्योधन) अधोमुख (निस्तेज) होकर उसी प्रकार व्यथित होता है जिस प्रकार श्रेष्ठ विषवैद्यों के द्वारा उच्चारित किये गये तार्क्ष्य (गरुड़) तथा वासुकि के नामों से युक्त अत्यन्त दुःसह मंत्रपदों के द्वारा गरुड़ के पादविक्षेपों का स्मरण करके सर्प अधोमुख होकर पीड़ित होता है। (अर्थात् निस्तेज हो जाता है)

भावार्थ—तुम्हारे (युधिष्ठिर के) नाम के श्रवण मात्र से ही महाबली अर्जुन के पराक्रम को स्मरण कर (दुर्योधन) उसी प्रकार पीड़ित हो जाता है, जैसे मन्त्रोच्चारण से गरुड़ के तीक्ष्ण पादविक्षेपों का स्मरण कर सर्प व्यथित होकर शक्तिहीन हो जाता है।

संस्कृत व्याख्या—दुर्योधनपक्षे-कथाप्रसंगेन - वार्तालापप्रसङ्गे, जनैः- तत्रस्थितैः जनैः, उदाहृतात् - उच्चारितात्, तव - भवतः युधिष्ठिरस्य अभिधानात् - नामोल्लेखात्, अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः - महाधनुर्धरस्य पार्थस्य अमोघपराक्रमस्य स्मरणं कृत्वा सः दुर्योधनः सुदुसहात्-अतिदुःसहात्, मंत्रपदात्

– मन्त्रशब्दात्, उरगः इव–सर्प इव, नताननः – अधोमुखः सन् व्यथते – विकली भवति। उरगपक्षे– कथाप्रसङ्गेषु – विषवैद्येषु इनजनाः – इनाः श्रेष्ठाः, जनैः उदाहृतात् – उच्चारितात्, तवाभिधानात् – तार्क्ष्यवासुक्यानामोल्लेखात्, मन्त्रपदात् – मन्त्रअक्षरात्–आखण्डलसूनोः – उपेन्द्रविष्णोः, वि – पक्षी गरुड़ः, तस्य क्रमः –पादविक्षेपः, अनुस्मृतः, स्मरणं कृत्वा, नतातनः: – अवनतमुखः सन्, व्यथते– महती पीड़ामनु भवति।

व्याकरण—कथाप्रसङ्गः – कथायाः प्रसङ्गः तेन कथाप्रसङ्गेन अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः – अनुस्मृतः आखण्डलस्य सूनोः विक्रम येन सः, उरगपक्षे–अनुस्मृतः आखण्डलस्य इन्द्रस्य सूनोः उपेन्द्रस्य विष्णोः वि पक्षी गरुड़ तस्य क्रमः – पादविक्षेपः येन सः अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः। उरगपक्षे – कथाप्रसङ्गेन जनाः – कथाप्रसङ्गेन इनाः जनाः तैः कथाप्रसङ्गेन जनैः उरगपक्षे–तवाभिधानात्–तश्च वश्च तवौ, तवयोः अभिधानं यस्मात् तवाभिधानात्। उरसा गच्छति इति – उरगः।

अलंकार—उपमा, श्लेषः।

अतः वह दुर्योधन युधिष्ठिर के साथ कुटिलाचरण करना चाहता है। अतः उसके कुटिलाचरण का प्रत्युत्तर देने के लिए अतिशीघ्र उपाय कीजिए।

तदाशु कर्तुं त्वयि जिह्ममुद्यते
विधीयतां तत्र विधेयमुत्तरम्।
परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां
प्रवृत्तिसाराः खलु मादृशां गिरः॥ २५॥

अन्वय—तत् त्वयि जिह्मं कर्तुम् उद्यते तत्र विधेयम् उत्तरम् आशु विधीयताम्। परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां मादृशां गिरः प्रवृत्तिसाराः खलु।

शब्दार्थ—तत् –तो, त्वयि – आपके प्रति, जिह्मं – कपटाचरणं कर्त्तुम्–करने के लिए, उद्यते – तत्पर, तत्र – दुर्योधन के वि,य में, विधेयम् – करणीय, उत्तरम् – प्रतीकार का, आशुः – शीघ्र (ही)विधीयतां– विधान कीजिए। परप्रणीतानि–दूसरे के द्वारा कहे गये, वचांसि–वचनों का, चिन्वतां–संग्रह करते हुए, मादृशां–मुझ जैसों (गुप्तचरों) की, गिरः– वाणी, खलु–निश्चित रूप से, प्रवृत्तिसाराः – वार्तातत्त्व वाली होती है।

हिन्दी अनुवाद—तो आपके प्रति कपटाचरण करने के लिए तत्पर, उस दुर्योधन के विषय में करणीय प्रतिकार का शीघ्र (ही) विधान कीजिए। दूसरे

के द्वारा कहे गये वचनों का संग्रह करते हुए मुझ जैसे (गुप्तचरों) की वाणी निश्चित रूप से वार्तातत्व वाली होती है।

भावार्थ—कुटिल चित्त वाला वह दुर्योधन आपके प्रति छल कपट का आचरण शीघ्र ही कर सकता है अतः आप भी उसकी कुटिलता का उत्तर देने के लिए शीघ्र ही व्यवस्था करें क्योंकि हम गुप्तचरों की वाणी केवल सुनने मात्र के लिए नहीं होती अपितु हमारी बातों को सुनकर शीघ्र तदनुरूप कार्य करना समाचीन है।

संस्कृत व्याख्या—तत्-तस्मात्, त्वयि - त्वद्विषये, जिह्मं - कपटाचरणं, कर्तुम् - आचरितुम्, उद्यते - समुद्यते, तत्र तस्मिन् - दुर्योधने, विधेयं - करणीयं, उत्तरम्- प्रतिविधानम् - आशु - शीघ्रमेव, विधीयताम-क्रियताम् । परप्रणीतानि- अपरै जनैः उक्तानि, वचांसि - वचनानि चिन्वतां - संकलयताम्, मादृशां - अस्मादृशां, गुप्तचराणां - वार्ताहराणां, गिरः - वाचः प्रवृत्तिसाराः - श्रुतवार्ताकथनमात्रसाराः भवन्ति, खलु - निश्चितरूपेण।

व्याकरण—परप्रणीतानि- परैः प्रणीतानि (प्र + नी + क्त) कर्मणि (तृ० तत्पु) वचांसि - वच् + असुन कर्तरि। प्रवृत्तिसाराः - प्रवृत्तिः सारो यासां ताः मादृशां-अहमिव दृश्यमानाः तेषां मादृशाम्।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

वनेचर के द्वारा वर्णित दुर्योधन के राज्यवृत्तान्त को युधिष्ठिर ने अपने भाइयों तथा द्रौपदी को बताया—

इतीरियित्वा गिरमात्तसत्क्रिये,
गतेऽथ पत्यौ वनसंनिवासिनाम्।
प्रविश्य कृष्णासदनं महीभुजा,
तदाचचक्षेऽनुजसन्निधौ वचः॥ २६॥

अन्वय—वनसंनिवासिनां पत्यौ इति गिरम् ईरयित्वा आत्तसत्क्रिये गते (सति) अथ महीभुजा कृष्णासदनं प्रविष्य अनुजसन्निधौ तत् वचः आचचक्षे।

शब्दार्थ—वनसन्निवासिनां पत्यौ - वनेचरों (वननिवासियों) के स्वामी वनेचराधिप के, इति गिरम् - इस प्रकार वचन को, ईरयित्वा- निवेदन कर, आत्तसत्क्रिये-सत्कार (पारितोषिक) प्राप्त कर, गते - चले जाने पर अथ - इसके बाद, महीभुजा-महाराज युधिष्ठिर के द्वारा, कृष्णासदनं - द्रौपदी के भवन में, प्रविश्य - प्रविष्ट होकर, अनुजसन्निधौ- छोटे भाइयों के समक्ष, तत् वचः - उस बात को, आचचक्षे - वर्णित किया गया।

हिन्दी अनुवाद—वनेचरों के (वननिवासियों) के स्वामी के इस प्रकार के वचन को निवेदन कर सत्कार (पुरस्कार) ग्रहण कर चले जाने पर इसके बाद महाराज युधिष्ठिर के द्वारा द्रौपदी के भवन में प्रविष्ट होकर छोटे भाइयों के समक्ष उस बात को वर्णित किया गया।

भावार्थ—वनचरराज के द्वारा दुर्योधन के राज्य-वृत्तान्त का वर्णन करने के पश्चात् एवं पारितोषिक ग्रहण करने के उपरान्त चले जाने पर उस सम्पूर्ण वृत्तांत को युधिष्ठिर के द्वारा अपने छोटे भाइयों के समक्ष द्रौपदी के भवन से कहा गया।

संस्कृत व्याख्या—वनसंनिवासिनाम् पत्यौ - वनेचराणाम् स्वामिनः इति - इत्थं, गिरं - वाणी, ईरियित्वा - निवेदयित्वा, आत्तसत्क्रिये - प्राप्य पारितोषिकं, गते - निजगृहं प्रस्थिते सति, अथ - एतदनन्तरं, कृष्णासदनं - द्रौपदीभवनं प्रविश्य, अनुजसन्निधौ - भीमादिभातृणां समक्षं एव, महीभुजा - महाराजेन युधिष्ठिरेन्, तत् वचः - तत्सवं किरातोक्तं वृत्तान्तं, आचचक्षे, पुनराख्यातवान्।

व्याकरण—वनसन्निवासिनां - वने सन्निवसन्ति इति वनसन्निवासिनः तेषां - (उपपद तत्पु०), ईरयित्वा - ईर् + णिच् (चुरादि) क्त्वा। आत्तसत्क्रिये - आङ् + दा + क्त आत्तः, आत्ता सत्क्रिया येन सः (बहुव्रीहि), तस्मिन्। कृष्णासदनम्- सीदत्यस्मिन्निति सदनम् (सद् + ल्युट्) कृष्णायाः सदनम्, अनुजसन्निधौ अनु पश्चात् जाता इति अनुजाः अनुजानां सन्निधिः तस्मिन्।

अलंकार—अनुप्रासः

द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है—

निशम्य सिद्धिं द्विषतामपाकृती -
स्ततस्त्या विनियन्तुमक्षमाः।
नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनी -
रुदाजहार द्रुपदात्मजा गिरः ॥ २७॥

अन्वय—ततः द्विषतां सिद्धिं निशम्य ततस्त्याः अपाकृतीः विनियन्तुम अक्षमा द्रुपदात्मजा नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनीः गिरः उदाजहार।

शब्दार्थ—ततः - इसके बाद, द्विषतां - शत्रुओं की, सिद्धि - सफलता को, निशम्य - सुनकर, ततस्त्याः - उससे समुत्पन्न, अपाकृती-मनोविकारों को, विनियन्तुं - नियंत्रित करने में, अक्षमा - असमर्थ, नृपस्य - राजा युधिष्ठिर के,

मन्युव्यवसायदीपिनी - क्रोध एवं उद्योग को (बढ़ाने वाली) उद्दीप्त करने वाले-गिरः वचनों को, उदाजहार-कहा।

हिन्दी अनुवाद—इसके बाद शत्रुओं की सफलता को सुनकर उससे समुत्पन्न मनोविकारों को नियंत्रित करने में असमर्थ द्रौपदी ने राजा युधिष्ठिर के क्रोध एवं उद्योग को उद्दीप्त (बढ़ाने वाले) करने वाले वचनों को कहा।

भावार्थ—शत्रुओं की समृद्धि एवं सफलता को सुनकर दुःखी द्रौपदी ने अपने मनोविकारों को रोकने में असमर्थ होकर युधिष्ठिर के क्रोध एवं उद्योग को बढ़ाने वाली बातें कहीं।

संस्कृत व्याख्या—ततः - तदनन्तरम् द्विषतां - शत्रूणां, सिद्धि-साफल्यं, निशम्य - श्रुत्वा, ततस्त्याः - शत्रूणां सफलतायाः वृततान्तं श्रवणेन समुद्भूताम् अपाकृती-मनोक्लेशान्, विनियन्तुम्- निरोद्धुम्, अक्षमा-असमर्था, द्रुपदात्मजा, -द्रुपदतनया, नृपस्य-राज्ञां युधिष्ठिरस्य, मन्युव्यवसायदीपिनी-क्रोधोद्योगसंवर्धिनी, गिरः वाचः, उदाजहार-कथितवती।

व्याकरण—द्विषतां-द्विषन्ति इति द्विषन्तः तेषाम्। निशम्य - नि + शम् दिवादि ल्यप् ततस्त्याः - ततः आगताः इति ततस्त्याः अपाकृतीः - अपाकरणम् अपाकृतिः ताः अपाकृती, विनियन्तुम् (वि + नि + यम् + तुमुन्) अक्षमा - क्षमते इति क्षमा, न क्षमा अक्षमा (नञ् तत्पु०) द्रुपदात्मजा - आत्मनो जाता इति आत्मजा, द्रुपदस्य आत्मजा इति द्रुपदात्मजा, मन्युव्यवसायदीपिनी-मन्युश्च व्यवसायश्च इति मन्युव्यवसायौ इतरेतर द्वन्दसमास तयोः दीपिनी इति मन्युव्यवसायदीपिनी, उदाजहार - उद् + आ + लिट् प्रथम पु० एक व०।

अलंकार—अनुप्रास।

द्रौपदी को मानसिक व्यथाएं कुछ कहने के लिए प्रेरित करती हैं—

> **भवादृशेषु प्रमदाजनोदितं**
> **भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम्।**
> **तथापि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां**
> **निरस्तनारीसमया दुराधयः॥ २८॥**

अन्वय—भवादृशेषु प्रमदाजनोदितम् अनुशासनम् अधिक्षेप इव भवति, तथापि निरस्तनारीसमयाः दुःराधयः मां वक्तुं व्यवसाययन्ति।

शब्दार्थ—भवादृशेषु - आप जैसे (ज्ञानवान) लोगों के विषय में, प्रमदाजनोदितम् - स्त्रीजनों के द्वारा कथित, अनुशासनम् - कर्तव्योपदेश,

अधिक्षेप: इव भवति - अपमान के समान होता है। तथापि - तो भी (कर्तव्योपदेश देना अनुचित होने पर भी), निरस्तनारीसमया: - स्त्रीजनोचित शालीनता विनष्ट कर देने वाली, दुराधय: - दु:सह मानसिक व्यथाएँ मां - मुझको, वक्तुं - (कुछ) कहने के लिए, व्यवसाययन्ति-प्रेरित कर रही है।

हिन्दी अनुवाद—आप जैसे (ज्ञानवान) लोगों के विषय में स्त्रीजनों के द्वारा कथित कर्तव्योपदेश अपमान के समान होता है। तो भी (कर्तव्योपदेश देना अनुचित होने पर भी) स्त्रीजनोचित शालीनता विनष्ट कर देने वाली दु:सह मानसिक व्यथाएँ मुझको कुछ कहने के लिए प्रेरित कर रही हैं।

भावार्थ—मुझ जैसी स्त्रियाँ यदि आप जैसे ज्ञानियों एवं धर्मवेत्ता जनों को कर्त्तव्य का उपदेश दें, तो यह आप के लिए अपमानस्वरूप है, फिर भी दुर्दमनीय मनोव्यथाएँ मुझे कुछ कहने के लिए प्रेरित कर रही है।

संस्कृत व्याख्या—भवादृशेषु-भवद्विधेषु पण्डितजनेषु, प्रमदाजनोदितं स्त्रीजनोक्तं, अनुशासनं - कर्तव्योपदेश:, अधिक्षेप इव - तिरस्कार इव भवति, तथापि निरस्तनारीसमया - परित्यक्तस्त्रीजनोचितशालीनत्वं, दुराधय: दुर्दान्ता: मनोव्यथा:, माम् - द्रौपदीं वक्तुं उपदेष्टुम् कथयितुं वा, व्यवसायन्ति - प्रेरयन्ति।

व्याकरण—भवादृशेषु-भवन्तमिव दृश्यन्ते इति भवादृशा: तेषु भवादृशेषु, प्रमदाजनोदितम् — प्रमंद: अस्ति अस्यां इति प्रमदा प्रमदाचासौ जनश्च इति प्रमदाजन: (कर्मधारय समास) निरस्तनारीसमया: - नारीणां समया: इति नारी-समया: (षष्ठी तत्पुरुष:) "समय: शपथाचारकालसिद्धांतसंविद:" अमरकोष। समय का तात्पर्य है - शालीनत्व - निरस्ता: नारीसमया: यै: ते निरस्तनारी-समया: (बहुव्रीहि), दुराधय: - दु: दुष्टा: आधय: इति दुराधय: (प्रादि तत्पु०) व्यवसायन्ति वि + अव + सो + णिच् लट् लकार प्रथम पुरुष, बहुवचन।

द्रौपदी युधिष्ठिर से कह रही है कि तुमने अपना राज्य अपने हाथों से गँवा दिया है—

> **अखण्डमाखण्डलतुल्यधामभि:,**
> **चिरं धृता भूपतिभि: स्ववंशजै:।**
> **त्वयात्महस्तेन मही मदच्युता,**
> **मतंगजेन स्त्रगिवापवर्जिता॥ २९॥**

अन्वय—आखण्डलतुल्यमभि:, स्ववंशजै: भूपतिभि: चिरम् अखण्डं धृता मही त्वया मदच्युता मतङ्गजेन स्त्रगिव आत्महस्तेन अपवर्जिता।

शब्दार्थ—आखण्डलतुल्यधामभिः - इन्द्र के समान प्रभावशाली, स्ववंशजैः - अपने वंशज, भूपतिभिः - राजाओं द्वारा चिरम् - चिरकाल तक, अखण्डम् - अखण्ड रूप से, धृता-पालित, महीं - पृथ्वी को, त्वया - आपने, मदच्युता - मदस्रावी मतङ्गजेन-हाथी के द्वारा, स्रगिव - पुष्पमाला की भाँति, आत्महस्तेन -अपने हाथ से, अपवर्जिता-खो दिया है।

हिन्दी अनुवाद—इन्द्र के समान प्रभावशाली अपने वंशज राजाओं के द्वारा चिरकाल तक अखण्ड रूप से पालित पृथ्वी को आपने, मदस्त्रावी हाथी के द्वारा अपनी सूंड़ से फेंकी गई पुष्पमाला के समान, अपने हाथ से खो दिया है।

भावार्थ—जिस पृथिवी का चिरकाल तक पालन आपके पूर्वज इन्द्रतुल्य पराक्रमी राजाओं द्वारा किया गया था, उसी पृथ्वी को आपने चपलता से अपने हाथों से उसी प्रकार गँवा दिया है जिस प्रकार मतवाला हाथी पुष्पमाला फेंक देता है।

संस्कृत व्याख्या—आखण्डलतुल्यधामभिः - इन्द्रसदृशैः तेजस्विभिः, स्ववंशजैः - आत्मवंशोत्पन्नैः, नृपतिभिः - राजभिः चिरं - बहुकालपर्यन्तम्, अखण्डम् - अखण्डरूपेण, धृता - पालिता, महीं -पृथिवीं, त्वया - महाराजयुधिष्ठिरेन, मदच्युता - मदमत्तेन, मतङ्गजेन — गजेन, स्त्रगिव - पुष्पमालेव, आत्महस्तेन - स्वकरेण, अपवर्जिता - परित्यक्ता।

व्याकरण—आखण्डलतुल्यधामभिः-तुल्यं धाम येषां ते तुल्यधामानः (बहुव्रीहि समास) आखण्डलेन (इन्द्रेण) तुल्यधामानः (सुप्सुपा) स्ववंशजैः - स्वस्य निजस्य वंशः इति स्ववंशः (तत्पु०) तस्मिन् जाता इति स्ववंशजाः तैः स्ववंशजैः, अखण्डम् - न खण्डः अखण्डः (नञ् समास) तत् यथा स्यात् तथा, मदच्युतामदं च्योतति इति मदच्युत् तेन मदच्युता (उपपद तत्पुरुष) मतङ्गजेन - मतङ्गात् जातः - मतङ्गजः तेन मतङ्गजेन, स्त्रक् सृज्यते सयत्नं विधीयते इयम् इति स्त्रक्। **अलंकार**—उपमा।

युधिष्ठिर से द्रौपदी कहती है—मायावी व्यक्ति के साथ जो मायावी नहीं बनता वह व्यक्ति पराजय अथवा मृत्यु को प्राप्त होता है—

> **व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं**
> **भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।**
> **प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधान्**
> **असंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः॥ ३०॥**

अन्वय—मूढ़धियः ते पराभवं व्रजन्ति ये मायाविषु मायिनः न भवन्ति। शठाः तथाविधान् असंवृताङ्गान् निशिता इषवः इव प्रविश्य घ्नन्ति हि।

शब्दार्थ—मूढ़धियः - मन्दबुद्धि पुरुष, पराभवं - प्राप्त होते हैं, ये - जो, मायाविषु - मायावियों के विषय में, मायिनः - पराजय को, व्रजन्ति, मायावी, न भवन्ति-नहीं होते। शठाः - धूर्त व्यक्ति, तथाविधान् - उस प्रकार के (मायारहित लोगों को) असंवृताङ्गान् - अनावृत (कवच इत्यादि से न ढके हुए) शरीर वाले लोगों को, निशिता - तीक्ष्ण, इषवः इवः -बाणों के समान, प्रविश्य - प्रविष्ट होकर (आत्मीय बनकर), घ्नन्ति - (उन्हें) मार ही डालते हैं।

हिन्दी अनुवाद—मन्दबुद्धि वे पुरुष पराजय को प्राप्त होते हैं जो मायावियों (कपटी जनों) के विषय में मायावी (कपटपूर्ण आचरण वाले) नहीं होते हैं। धूर्त व्यक्ति तीक्ष्ण बाण द्वारा बेधित अनावृत्त शरीर की भाँति उस प्रकार के (मायारहित लोगों को) मार डालते हैं।

भावार्थ—जो व्यक्ति मायावी लोगों के साथ वंचना का आचरण नहीं करते हैं, वे व्यक्ति पराजय को प्राप्त होते हैं क्योंकि कपटी लोग सीधे सरल स्वभाव वाले लोगों के आत्मीय बनकर, उनकी गुप्त बातों को जानकर, अन्ततः उनको धोखा देकर उसी प्रकार मार डालते हैं जिस प्रकार तीक्ष्ण बाण कवच इच्यादि से न ढके शरीर में घुस कर उसको मार डालता है।

संस्कृत व्याख्या—मूढ़धियः ते - मन्दबुद्धयः ते जनाः, पराभवं - पराजयं, ब्रजन्ति - प्राप्नुवन्ति, ये - ये जनाः, मायाविषु - कपटाचरणयुक्तेषु जनेषु, मायिनः कपटाचरणयुक्ताः, न भवन्ति - उपजायन्ते, शठाः - धूर्ताः वञ्चकाः वा, तथाविधान् - सज्जनपुरुषान्, असंवृताङ्गान् - अवर्मितशरीरान् जनान्, निशिता - तीक्ष्णाः, इषवः इव - बाणाः इव, प्रविश्य - अन्तःप्रविश्य, घ्नन्ति - व्यापादयन्ति। यथा कवचरहितान् जनान् शराः मारयन्ति तथैव वञ्चकाः अपि सरलस्वभावयुक्तान् पुरुषान् आत्मीयं भूत्वा तान् मारयन्ति।

व्याकरण—ध्यायति अनया इति धीः, मूढ़ाः धीः येषां ते (बहुव्रीहि) मायाविषु - माया अस्ति एषाम् इति मायाविनः तेषु, मायिनः - माया अस्ति एषामिति मायिनः तथाविधान् - तद् + थाल्, तथा विधा येषां ते (बहु०) तान्, असंवृताङ्गान् - न संवृतम् असंवृतम् (नञ्) असंवृतं अङ्गम येषां ते (बहुब्री०) तान्। **अलंकार**—उपमा।

द्रौपदी युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित करते हुए कहती है—

आपके अतिरिक्त दूसरा कोई राजा नहीं है जो अपनी राज्यश्री तथा पत्नी का अपहरण शत्रुओं से करायेगा—

> **गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः**
> **कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः।**
> **परैस्त्वदन्यः क इवापहारये-**
> **न्मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम्॥ ३१॥**

अन्वय—अनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी त्वदन्यः क इव नराधिपः गुणानुरक्तां कुलजां मनोरमां श्रियम् आत्मवधूम् इव परैः अपहारयेत।

शब्दार्थ—यह श्लोक उभयार्थक है—एक द्रौपदी के पक्ष में तथा दूसरा साम्राज्यलक्ष्मी के पक्ष में है। अनुरक्तसाधनः - अनुकूल साधनों वाला (अनुकूल सैन्यबल वाला) कुलाभिमानी - (उच्च) कुलाभिमानी (क्षत्रियत्व अभिमानी), त्वत् अन्य - आपके अतिरिक्त, कः इव - कौन सा, नराधिपः - राजा, गुणानुरक्तां - सौन्दर्यादि गुणों में अनुरक्त, (सन्धि - विग्रहादि छः गुणों में अनुरक्त) कुलजां - उच्च कुलोत्पन्ना (कुल क्रम से आई हुई), मनोरमां - मनोहारिणी (मनोनुकूल), श्रियम् - साम्राज्य लक्ष्मी को, आत्मवधूम् इव- प्रियतमा की भाँति, परैः - दुर्योधन आदि दूसरों से (शत्रुओं से) अपहारयेत् - अपहरण करायेगा?

हिन्दी अनुवाद—अनुकूल साधनों (सेवकों) वाला, (उच्च) कुल का मानी आपके अतिरिक्त कौन दूसरा राजा है जो, (सौन्दर्यदयादाक्षिण्यादि) गुणों में अनुरागवती, (उच्च) कुलोत्पन्ना एवं मनोहारिणी भार्या की भाँति, (सन्धि विग्रहादि छः) गुणों में अनुरक्ता कुलक्रम से (वंशपरम्परा से) आई हुई, मनोनुकूल अपनी साम्राज्यलक्ष्मी को दूसरों (शत्रुओं) से अपहरण करायेगा?

भावार्थ—जैसे कोई शक्तिसम्पन्न राजा अपनी मनोहारिणी, कुलीन भार्या को अपहरण करा दे उसी प्रकार आपने वंशपरम्परा के प्राप्त साम्राज्य लक्ष्मी का दुर्योधनादि से अपहरण कराया है, ऐसा निकृष्ट कार्य करने वाला तुम्हारे अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति नहीं है।

संस्कृत व्याख्या—अनुरक्त साधनः - अनुकूलसहायवान् कुलाभिमानी -कुलीनत्वाभिमानी, क्षत्रियत्वाभिमानी, त्वत् अन्यः - त्वत्तः भिन्न, कः - अपरः नराधिपः - राजा, गुणानुरक्तां - सौन्दर्यदयादाक्षिण्यादिगुणानुरागवती, कुलजां -

उच्चकुलोत्पन्ना, मनोरमां - मनोहारिणां आत्मवधूमिव - स्वभार्यामिव - श्रीपक्षे - गुणानुरक्तां - सन्धिविग्रहादिषड्भिर्गुणैरनुरक्ताम्, कुलजां - कुलक्रमादागतां वंशपरम्परा-प्राप्तां वा, मनोरमा - आनन्ददात्री, श्रियम् - साम्राज्यलक्ष्मीम्, परैः शत्रुभिः, अपहारयेत् - स्वमेवापहारं कारयेत्।

व्याकरण—अनुरक्तसाधनः - साधयति अनेन इति साधनम् (साध् + णिच् + ल्युट्) अनुरक्तं साधनं यस्य सः (बहुव्रीहि समास), कुलाभिमानी - कुलस्य अभिमानः इति कुलाभिमानः, कुलाभिमानः अस्ति अस्य इति कुलाभिमानी कुलजाम् - कुलात् कुले वा जाता इवि कुलजा ताम् कुलजाम् गुणानुरक्ताम् - गुणैः स्वसौन्दर्यादिभिर्वा सन्धिविग्रहादिभिर्वा अनुरक्ता इति गुणानुरक्ताम् मनोरमा-रमयति इति रमा, मनसः रमा इति मनोरमा ताम्।

अलंकार—पूर्णोपमा।

द्रौपदी अपने वचनों के द्वारा युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त कर रही है—

भवन्तमेतर्हि मनस्विगर्हिते,
विवर्तमानं नरदेव वर्त्मनि।
कथं न मन्युर्ज्वलयत्युदीरितः,
शमीतरुं शुष्कमिवाग्निरुच्छिखः॥ ३२॥

अन्वय—नरदेव! एतर्हि मनस्विगर्हिते वर्त्मनि विवर्तमानं भवन्तम् उदीरितः मन्युः शुष्कं शमीतरुम् उच्छिखः अग्निरिव कथं न ज्वलयति।

शब्दार्थ—नरदेव - हे राजन्! एतर्हि - इस (विपत्ति के) समय में मनस्विगर्हिते - वीरजनों द्वारा निन्दित, वर्त्मनि - मार्ग में, विवर्तमानम् - (दुर्योधनकृत) दुर्दशा का अनुभव करते हुए, भवन्तम् - आपको, उदीरितः उद्दीपित, मन्युः - क्रोध, शुष्कं - सूखे, शमीतरुम् - शमीवृक्ष को, उच्छिखः - उर्ध्वमुखी ज्वलनशील, अग्निः इव - अग्नि के समान, कथं - कैसे, न ज्वलयति - नहीं प्रज्वलित करता है।

हिन्दी अनुवाद—हे राजन्! इस (विपत्ति के) समय में, वीरजनों द्वारा निन्दित मार्ग में, (दुर्योधनकृत) दुर्दशा का अनुभव करते हुए आपका उद्दीपित क्रोध सूखे शमीवृक्ष को उर्ध्वमुखी ज्वलनशील (उठी हुई लपटों वाले) अग्नि के समान कैसे नहीं प्रज्वलित करता है।

भावार्थ—हे राजन्! शत्रुओं के कारण राज्यसुख से वंचित होकर वनवास जैसे महान दुःख को भोगते हुए आप अपने क्रोधाग्नि से शत्रु का

विनाश उसी तरह करें जिस प्रकार सूखे हुए शमी वृक्ष को अग्नि जला देती है।

संस्कृत व्याख्या—नरदेव ! - राजन् एतर्हि - अस्मिन् विपत्तिकाले, मनस्विगर्हिते - शूरपुरुषविनिन्दिते, वर्त्मनि - मार्गे, विवर्तमानं - शत्रुकृत वनवासादिदुर्दशामनुभवन्तं, भवन्तं - सहायसम्पन्नं श्रीमतं, उदीरितः-उद्दीपितः, मन्युः - क्रोध (रूपी अग्निः) शुष्कं-नीरसं, शमीवृक्षम् - शमीतरुम्, उच्छिखः - समुद्रगतज्वालः अग्निः इव, वह्निरिव ज्वलयति - कथम् नोद्दीपयति।

व्याकरण—एतर्हि - अस्मिन् काले, इति एतर्हि (इदम् + ङि + हिल् स्वार्थे) इदमोर्हिल् तथा एतेतौ रथोः सूत्र से सप्तमी में एतर्हि बना। मनस्विगर्हिते - प्रशस्तं मनः अस्ति एषामिति मनस्विनः, तैः गर्हिते (गर्ह निंदायाम् + क्त कर्मणि) तृतीया तत्पुरुष, विवर्तमानं - (वि + वृत + शानच् कर्तरि) विवर्तते इति विवर्तमानः तम् उदीरितः (उद् + ईर् + णिच् + क्त - कर्तरि) उच्छिखः - उद्गता शिखा अस्य (बहुव्रीहि) ज्वलयति - ज्वल् + णिच् + लट् + ति।

अलंकार—उपमा।

द्रौपदी का कथन है—यद्यपि क्रोध निन्दनीय है, परन्तु यह देखा गया है कि उचित समय में क्रोध न करने वाला व्यक्ति इस संसार में महत्त्वहीन होता है—

> **अबन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां,**
> **भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।**
> **अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना,**
> **न जातहार्देन न विद्विषादरः॥ ३३॥**

अन्वय—अबन्धकोपस्य आपदां विहन्तुः (पुरुषस्य) देहिनः स्वयमेव वश्याः भवन्ति। (किन्तु) अमर्षशून्येन जन्तुना जातहार्देन (सता) जनस्य आदरो न (भवति) विद्विषां (सता) दरो न (भवति)।

शब्दार्थ—अवन्धकोपस्य—सफल क्रोध वाले (अर्थात् जिसका क्रोध कभी व्यर्थ नहीं जाता) आपदां—आपत्तियों के, विहन्तुः—विनाशक (पुरुष के), देहिनः—प्राणी, स्वयमेव—स्वयं ही (अपने आप ही) वश में, भवन्ति—हो जाते हैं। अमर्षशून्येन—क्रोधशून्य, जन्तुना—व्यक्ति के, जातहार्देन (सता)—स्नेहयुक्त होने पर भी, जनस्य आदरो न भवति—लोगों का आदर (आस्था) नहीं होता अर्थात् क्रोधरहित व्यक्ति लोगों से स्नेह भी रखता हो,

पर लोग उसके प्रति आस्था नहीं रखते, विद्विषा (सता), शत्रु होने से, न दरो भवति—(लोगों को) भय नहीं होता।

हिन्दी अनुवाद—सफल क्रोध वाले (अर्थात् जिसका क्रोध कभी व्यर्थ नहीं जाता) आपत्तियों के विनाशक पुरुष के वशीभूत, प्राणी स्वयं ही (अपने आप) हो जाते हैं। क्रोध शून्य व्यक्ति को स्नेहयुक्त होने पर भी लोगों का आदर नहीं प्राप्त होता। (उसके) शत्रु होने से (लोगों को उससे) भय नहीं होता है।

भावार्थ—क्रोधहीन व्यक्ति यदि मित्रता रखता है, तो भी उसके प्रति लोगों का सम्मान भाव नहीं होता, यदि शत्रुता रखता है, तो भी उससे प्रति भय का भाव नहीं होता। जो राजा प्रजा में निग्रह और अनुग्रह अवसरानुकूल दोनों का प्रयोग करने में सक्षम होता है सभी प्रजाजन स्वयं उसके वश में हो जाते हैं। अतः क्रोध शून्य होने से व्यक्ति को सफलता नहीं प्राप्त होती।

संस्कृत व्याख्या—अबन्ध्यकोपस्य—सफलक्रोधस्य, आपदां—विपत्तीनां विहन्तुः विनाशकस्य (राज्ञः) देहिनः—प्राणिनः, स्वयमेव—आत्मना एव, वश्याः—वशंगताः, भवन्ति—समुपजायन्ते, अमर्षशून्येन—क्रोधहीनेन, जन्तुना—जनेन, जातहार्देन—समुपजात प्रेम्णा (सता), जनस्य—लोकस्य आदर नः—सम्मानः न भवति, विद्विषा (सता) शत्रुणा सता दरः—भयं न - भवति।

व्याकरण—अबन्ध्यकोपस्य—बन्धुं योग्यः इति बन्ध्यः, न बन्ध्यः इति अबन्ध्यः (नञ् तत्पु०) अवन्ध्यः कोपः यस्य सः अबन्धकोपः तस्य, आपदाम्—आ + पद् + क्विप् भावे = आपद्, तासाम्, विहन्तुः—वि + हन् + तृच् कर्तरि = विहन्ता, तस्य, वश्याः—वशं गता इति वश्याः (वश् + यत्), देहिनः—देहः अस्ति एषामिति देहिनः (देह् + इनि + मत्वर्थे), अमर्षशून्येन—मृष् तितिक्षायाम् + घञ् भावे = मर्षः, न मर्षः इति अमर्षः (नञ् तत्पु०) अमर्षेण शून्यः तेन अमर्षशून्येन, जातहार्देन—हृदयस्य कर्म हार्दम् (हृदय + अण्) जातं हार्दम् यस्य सः तेन (बहुव्रीहि) विद्विषां-द्रष्टव्य श्लोक—३, आदरः—(आ + दृ + अप्) आदरः, दरः—दृ + अप् भावेः = दरः (भयः)।

अलंकार—विद्विषादर शब्द में विद्विषा + आदरः तथा विद्विषा + दरः —दो प्रकार से पदच्छेद सम्भव होने से श्लेष (सभङ्ग) अलंकार है। अनुप्रास अलंकार।

युधिष्ठिर से पूछते हुए द्रौपदी कहती है—महारथी भीमसेन की इस दुरवस्था से आप पीड़ित नहीं होते हैं—

परिभ्रमल्लोहितचन्दनोचितः
पदातिरन्तर्गिरिरेणुरूषितः।
महारथः सत्यधनस्य मानसं,
दुनोति नो कच्चिदयं वृकोदरः॥३४॥

अन्वय—लोहितचन्दनोचितः महारथः रेणुरूषितः पदातिः अन्तर्गिरि परिभ्रमन् अयं वृकोदरः सत्यधनस्य (तव) मानसं नो दुनोति कच्चित्?

शब्दार्थ—लोहितचन्दनोचित—उचित है लाल चन्दन जिसको अर्थात् (वनवास से पूर्व) रक्तचन्दन का अंगराग लेप करने के अभ्यासी, महारथ—रथ से विचरण करने वाले, रेणुरूषितः—(किन्तु वर्तमान समय में) धूलि-धूसरित तथा पदाति—पैदल (ही) अन्तर्गिरि—पवतों के मध्य, परिभ्रमन्—भटकते हुए, अयं वृकोदरः—यह भीमसेन, सत्यधनस्य—सत्यप्रतिज्ञ, मानसं—(आपके) मन को, नो दुनोति कच्चित्—क्या सन्तप्त (दुःखी) नहीं करते?

हिन्दी अनुवाद—(वनवास से पूर्व) रक्तचन्दन के अङ्गराग, के लेप का अभ्यासी, रथ से विचरण करने वाला (वर्तमान समय में) धूलधूसरित तथा पैदल (ही) पर्वतों के मध्य भटकते हुए यह भीमसेन सत्यव्रत (आपके) मन को क्या सन्तप्त (दुःखी) नहीं करते?

भावार्थ—द्रौपदी युधिष्ठिर से कह रही हैं—जो भीमसेन वनवास से पूर्व लालचन्दन का लेप करते थे, अब इस समय धूलिधूसरित हैं, जो रथ द्वारा ही संचरण करते थे, वह अब पैदल ही पर्वतों में शिकार करते हुए, पेट भरने का साधन जुटाते हुए भीमसेन को देखकर आपका चित्त दुःखी नहीं होता।

संस्कृत व्याख्या—लोहितचन्दनोचितः—(वनवास पूर्वकाले) अभ्यस्तरक्त-चन्दनानुलेपः, महारथः—रथचारी, रेणुरूषितः—(अद्य तु) धूलधूसरितः, पदाति—पादचारी अन्तर्गिरि—गहनपर्वतमध्यभागेषु, परिभ्रमन्—इतस्ततः मृगयार्थं फलमूलाहरणार्थं वा विचरन्, अयं वृकोदरः—भवदनुजो भीमः, सत्यधनस्य—सत्यव्रतस्य, (तव) मानसं—चित्तं, न दुनोति कच्चित्—किं न सन्तापयति।

व्याकरण—लोहितचन्दनोचितः—उचितं लोहितं चन्दनं यस्य सः लोहितचन्दनोचितः (बहुव्रीहि), महारथः—महान् रथो यस्य सः महारथः

(बहुव्रीहि), रेणुरूषितः-रेणुभिः रूषितः इति रेणुरूषितः, पदाति—पादाभ्याम् अतति गच्छति इति पदातिः, अन्तर्गिरि—गिरिषु इति अन्तर्गिरि, वृकोदरः —'वृक' का अर्थ भेड़िया होता है। वृकस्य उदरम् तदिव उदरम् यस्य सः वृकोदरः (बहुव्रीहि) वृक् का दूसरा अर्थ जठराग्नि है, तब विग्रह इस प्रकार बनेगा—वृकनामा अग्निर्विद्यते उदरे यस्य सः वृकोदरः (बहुव्रीहि समास) सत्यधनस्य—सत्यम् एव धनं यस्य सः सत्यधनः तस्य (बहुव्रीहि)।

द्रौपदी युधिष्ठिर को फटकारते हुए कहती है कि महावीर अर्जुन की वर्तमान दुरवस्था को देखकर आपको क्रोध क्यों नहीं आता?

विजित्य यः प्राज्यमयच्छदुत्तरान्,
कुरूनकुप्यं वसु वासवोपमः।
स वल्कवासांसि तवाधुनाहरन्,
करोति मन्युं न कथं धनञ्जयः ॥३५॥

अन्वय—वासवोपमः यः उत्तरान् कुरून् विजित्य प्राज्यम् अकुप्यं वसु अयच्छन् स धनञ्जयः अधुना तव वल्कवासांसि आहरन् (तव) मन्युं कथं न करोति।

शब्दार्थ—वासवोपमः—इन्द्रतुल्य, यः—जिसने, उत्तरान् कुरून्—मेरू के समीप में स्थित उत्तर कुरूप्रदेशों को विजित्य—जीतकर, प्राज्यम्—अत्यधिक, अकुप्यम्—(ताम्रादि से भिन्न) हेमरूप्य रत्नादि, वसु—धन, अयच्छत्—समर्पित किया था, सः धनञ्जय—वही धनञ्जय, अधुना—इस समय, तव वल्कवासांसि—तुम्हारे लिए वल्कल, वस्त्रों को, आहरन्—लाता हुआ, मन्युं—(तुम्हारे) क्रोध को कथं न करोति—कैसे उभाड़ नहीं देता।

हिन्दी अनुवाद—इन्द्रतुल्य जिसने (मेरू के समीप स्थित) उत्तर कुरु प्रदेशों को जीतकर अत्यधिक, (ताम्रादि से भिन्न) हेमरूप्य रत्नादि धन समर्पित किया था। वही धनञ्जय इस समय तुम्हारे लिए वल्कलवस्त्रों को लाता हुआ (तुम्हारे) क्रोध को कैसे नहीं भड़का देता?

भावार्थ—जिस पराक्रमी अर्जुन उत्तरकुरु प्रदेशों को जीतकर आप को सोना-चांदी रूपी धनों को लाया था। वही अर्जुन आपके लिए वल्कल वस्त्रों को ला रहा है। यह देखकर आपकी क्रोधाग्नि क्यों नहीं भड़कती है?

संस्कृत व्याख्या—वासवोपमः—इन्द्रसदृशः यः—अर्जुनः उत्तरान् कुरून्—पुरा राजसूययागप्रसङ्गे मेरुसमीपस्थान् दुर्गम्यान् वैभवपूर्णान् उत्तरकुरु

प्रदेशान् विजित्य—जित्वा, प्राज्यम्—प्रभूतम् अकुप्यम् स्वर्णरजतरत्नयुक्तम्, वसु—धनम्, अयच्छत्—भवते दत्तवान् स (एव) धनंजय—स एव धनजेता पार्थः, अधुना—साम्प्रतम् तव—भवते, वल्कवासांसि—वल्कलवस्त्राणि, आहरन्—समानयन्, मन्युं कथं न करोति—केन कारणेन तव क्रोधाग्निं न प्रज्वलयति इत्येव महदाश्चर्यम्।

व्याकरण—वासवोपमः—वासवः (इन्द्रः) उपमा यस्य सः (बहुव्रीहि)—प्राज्यम्—प्रजीयते इति प्राज्यम् अथवा प्रकर्षेण अज्यते काम्यते इति प्राज्यम्, अकुप्यं—गुप्यते रक्ष्यते इति कुप्यम् (सुवर्णरजतभिन्नं धनं कुप्यम्) (गुप् + क्यप् कर्मणि) न कुप्यं अकुप्यं (नञ् तत्पु०) अकुप्य का तात्पर्य है सोना व चाँदी (देखें मल्लिनाथ—अकुप्यं—हेमरूप्यात्मकम्) अयच्छत्—दाण् + लृङ् + त दाण स्थाने यच्छ, धनञ्जयः—धनं जयतीति धनञ्जयः, वल्कवासांसि—वस्यते आच्छाद्यते अङ्गम् अनेन इति वासस्, वल्कानि एव वासांसि इति वल्कवासांसि (कर्मधारय समास)

अलंकार—अनुप्रास।

युधिष्ठिर से द्रौपदी प्रश्न पूछते हुए कह रही है कि नकुल तथा सहदेव की दुर्दशा देखकर भी आपका धैर्य एवं सत्यव्रती स्वभाव समाप्त क्यों नहीं हो रहा है?

वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती,
कचाचितौ विष्वगिवागजौ गजौ।
कथं त्वमेतौ धृतिसंयमौ यमौ
विलोकयन्नुत्सहसे न बाधितुम्॥३६॥

अन्वय—वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती विष्वक् कचाचितौ अगजौ गजौ इव एतौ यमौ विलोकयन् त्वं धृतिसंयमौ बाधितुं कथं न उत्सहसे।

शब्दार्थ—वनान्तशय्या—वनभूमि में शयन के कारण, कठिनीकृताकृती—कठोर देह वाले, विष्वक्—सब ओर से, कचाचितौ—कच अर्थात् केशों से आचितौ अर्थात् व्याप्त—केशों से व्याप्त, बाल न कटा सकने के कारण बिखरे बालों से युक्त हैं, अगजौ गजौ इव—जो चल न सके उसे अग कहते हैं अर्थात् पर्वत तथा पर्वत में उत्पन्न होने वाले को अगज अर्थात् पर्वतीय हाथियों के समान, एतौ यमौ—इन जुड़वा भाईयों को (पाण्डु की कनिष्ठ राजमहिषी माद्री ने नकुल, सहदेव को एक साथ जन्म दिया था), विलोकयन्—देखते हुए (भी)

त्वम्—आप, धृतिसंयमौ—धैर्य तथा संयम को, बाधितुं—परित्याग करने के लिए, कथं न उत्सहसे—क्यों नहीं उत्साहित होते।

हिन्दी अनुवाद—वनभूमि में शयन के कारण कठोर देह वाले, सब ओर से (विशीर्ण, बिखरे हुए) केशों से व्याप्त पर्वत में उत्पन्न हाथी के समान इन जुड़वा भाइयों (माद्री पुत्र नकुल तथा सहदेव) को देखते हुए (भी) आप धैर्य तथा संयम का परित्याग करने के लिए क्यों नहीं उत्साहित होते। अर्थात् धैर्य एवं संयम को छोड़कर उत्साहयुक्त होकर युद्ध के लिए तत्पर हो जायें।

भावार्थ—नकुल सहदेव वनवास में चिकनी शय्या न होने के कारण भूतल में ही सो रहे हैं, जिससे कि इनका शरीर कठोर हो गया है। तथा बाल न कटवा पाने के कारण बिखरे हुए मुखमण्डल के चारों ओर फैले हुए हैं। इन की इस विपत्ति को देखकर भी आप संयम एवं सन्तोष को छोड़ने के लिए क्यों तत्पर नहीं हो रहे हैं?

संस्कृत व्याख्या—वनान्तशयाकठिनीकृताकृती—वनभूमि शयनेन कठिनीकृतदेहौ, विष्वक्—सर्वतः, कचाचितौ—पर्याकुलौमूर्धजौ व्याप्तौ, अगजौ गजौ इव—पर्वतोत्पनौ गजराजौ इव, एतौ यमौ—यौ कोमलौ युग्मजौ माद्रीपुत्रौ नकुलसहदेवौ, विलोकयन्—पश्यन्, त्वं धृतिसंयमौ—भवान् सन्तोषसंयमौ बाधितुं—परित्यक्तुं, कथं न उत्सहसे-कस्मात् कारणात् उद्योगे न प्रवर्तते।

अलंकार—यमक अलंकार।

द्रौपदी युधिष्ठिर के द्वारा भोगे जा रहे कष्टों का उल्लेख कर रही है—

> **इमामहं वेद न तावकीं धियं,**
> **विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः।**
> **विचिन्तयन्त्या भवदापदं परां,**
> **रुजन्ति चेतः प्रसभं ममाधयः॥३७॥**

अन्वय—इमां तावकीं धियम् अहं न वेद। चित्तवृत्तयः विचित्ररूपाः खलु। परां भवदापदं विचिन्तयन्त्याः मम चेतः आधयः प्रसभं रुजन्ति।

शब्दार्थ—इमां तावकी धियम् अहं न वेद—इस आपकी (वर्तमान) बुद्धि को मैं नहीं समझ पा रही हूं। अर्थात् इस प्रकार की पराजय तथा आत्मीय जनों को पीड़ायुक्त देखने पर भी आप क्रोधयुक्त नहीं हो रहे हैं, इस आश्चर्यजनक मनोभावों को मैं नहीं समझ पा रही हूँ। चित्तवृत्तयः—(संसार में लोगों की) चित्तवृत्तियाँ, विचित्ररूपाः खलु—वस्तुतः विलक्षण स्वरूपों वाली होती है,

क्योंकि संसार में प्रत्येक व्यक्ति के संकल्प, विकल्प तथा मनोभाव भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। पराम्—(आपकी) महती, भवदापदं—(आपकी) विपत्ति की, विचिन्तयन्त्याः—चिन्ता करती हुई, मम चेतः—मेरे चित्त को, आधयः—मनोव्यथाएँ, प्रसभम्—बलपूर्वक, रुजन्ति—व्याकुल कर रही हैं।

हिन्दी अनुवाद—इस आपकी वर्तमान बुद्धि को मैं नहीं समझ पा रही हूँ। (संसार में लोगों की) चित्तवृत्तियाँ वस्तुतः विलक्षण स्वरूपों वाली होती हैं। आपकी महती विपत्ति की चिन्ता करती हुई मेरे चित्त को मनोव्यथाएँ बलपूर्वक व्याकुल कर रही हैं।

भावार्थ—पराजय और आत्मीय जनों के द्वारा पीड़ा एवं अपमान भोगे जाने पर भी आपकी मानसिक स्थिति को मैं नहीं समझ पा रही हूँ, संसार में प्रत्येक व्यक्ति की मानसिकता अलग-अलग होती है। परन्तु आपकी जो दुर्दशा हो रही है, उसे देखकर मैं अत्यन्त दुःखी हूँ।

संस्कृत व्याख्या—इमां—साम्प्रतिकीं परिदृश्यमाना, तावकीं त्वदीयां, धियं—मतिं, चित्तवृत्तिं वा, अहं—द्रौपदी, न वेद—न जानामि, चित्तवृत्तयः—(संकल्पविकल्पात्मका) चित्तव्यापाराः, खलु—निश्चयेन, विचित्ररूपाः—विलक्षणरूपिण्यः भवन्ति अतएव दुर्बोधाः भवन्ति। पराम्—महतीं, भवदापदं—तव विपत्तिं, विचिन्तयन्ताः, ध्यायन्त्याः परिभावयन्त्याः वा, मम—(द्रौपदी) चेतः—आधयः—मनोव्यथाः, प्रसभं-हठपूर्वकम्, रुजन्ति—पीडयन्ति व्याकुली कुर्वन्ति वा।

व्याकरण—तावकीं—तव इयं तावकी, ताम्, विचित्ररूपाः—विशेषेण चित्राः इति विचित्राः विचित्रं रूपं यासां वाः विचित्ररूपाः (बहुव्रीहि)

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

द्रौपदी युधिष्ठिर के पूर्वानुभूत सुखों तथा वर्तमानानुभूत दुःखों की ओर ध्यान दिला रही है—

> **पुराधिरूढः शयनं महाधनं,**
> **विबोध्यसे यः स्तुतिगीतिमङ्गलैः।**
> **अदभ्रदर्भामधिशय्य स स्थलीं,**
> **जहासि निद्रामशिवैः शिवारुतैः ॥३८॥**

अन्वय—यः (त्वम्) महाधनम् शयनम् अधिरूढ़ः, स्तुतिगीतिमङ्गलैः पुरा विवोध्यसे, स अदभ्रदर्भाम् स्थलीम् अधिशय्य अशिवैः शिवारुतैः निद्राम् जहासि।

शब्दार्थ—यः (त्वं) जो (आप युधिष्ठिर), महाधनम्—बहुमूल्य, शयनं अधिरूढ़—शय्या पर (सुखपूर्वक) शयन करते हुए, पुरा—पूर्वकाल में (चारणों के) स्तुतिगीतमङ्गलैः—माङ्गलिक स्तुतिपरक गीतों से, विबोध्यसे—जगाये जाते थे, स—वह (आप अब) अदभ्रदर्भाम्—अत्यधिक कुशकण्टकों से समाच्छादित, स्थलीं—वनभूमि में, अधिशय्य—सोते हुए, अशिवैः—अमङ्गलकारिणी, शिवारुतैः—श्रृगालियों (जम्बुकी अथवा स्यारिनों) की (कर्णकटु) बोलियों से, निद्रा जहासि—निद्रा को त्यागते हो।

हिन्दी अनुवाद—जो (आप युधिष्ठिर) बहुमूल्य शय्या पर (सुखपूर्वक) शयन करते हुए पूर्वकाल में (चारणों के) माङ्गलिक स्तुतिपरकगीतों से जगाये जाते थे। वह (आप अब) अत्यधिक कुशकण्टकों से समाच्छादित वनभूमि में सोते हुए श्रृगालियों (जम्बुकी, स्यारिनों) की अमङ्गलकारिणी (कर्णकटु) आवाजों से निद्रा को त्यागते हो।

संस्कृत व्याख्या—यं (भवान् युधिष्ठिरः) (इन्द्रप्रस्थनगरे) महाधनं—महारत्नजटितां सुवर्णनिर्मितां बहुमूल्यां शयनम्—शय्यां, अधिरूढं—सुखेन सुप्तः, स्तुतिगीतिमङ्गलैः—प्रातःकाले चारणैः माङ्गलिकैः स्तुतियुक्तैगीतिभिः, पुरा विवोध्यसे—विगतनिद्रो अभूः, सः—भवानद्य, अदभ्रदर्भाम्—बहुकुशकण्टकैः समाच्छादितां स्थलीं अधिशय्य—वनभूमौ शयित्वा, अशिवैः—अमाङ्गलिकैः, शिवारुतैः—जम्बुकीध्वनिभिः, निद्रां जहासि—निद्रां परित्यजसि।

व्याकरण व्याख्या—महाधनं—महत् धनं यस्य तत् महाधनम् (बहुव्रीहि) स्तुतिगीतिमङ्गलैः—स्तुतीनां गीतयः इति स्तुतिगीतयः ता एव मङ्गलानि तैः (कर्मधारय) अदभ्रदर्भाम्—अदर्भत्वं बहुलत्वं, अदभ्राः दर्भाः अस्याम् इति (बहुव्रीहि समास) अशिवैः—न शिवानि अशिवानि (नञ् तत्पुरुष) तैः—अशिवैः—शिवानां रुतानि (ष० तत्पु०) तैः।

अलंकारः—विषम, अनुप्रासः।

युधिष्ठिर को स्मरण दिलाते हुए द्रौपदी कहती है कि आप पहले शरीर को सुन्दर बनाने वाला भोजन करते थे—

> **पुरोपनीतं नृप रामणीयकं,**
> **द्विजातिशेषेण यदेतदन्धसा।**
> **तदद्य ते वन्यफलाशिनः परं**
> **परैति कार्श्यं यशसा समं वपुः॥३९॥**

अन्वय—हे नृप! यत् एतत् वे वपुः पुरा द्विजातिशेषेण अन्धस्य रामणीयकम् उपनीतम्, अद्य वन्यफलाशिनः ते तत् यशसा समं परं कार्श्यं परैति।

शब्दार्थ—हे नृप!—हे राजन्! राजन् यत् एतत् ते वपुः—जो यह तुम्हारा शरीर, पुरा—पहले, द्विजातिशेषेण—द्विजों (ब्राह्मणों) के खाने से शेष बचे अन्धसा—अन्न (भक्षण करने से), रामणीयकम्—रमणीयता को, उपनीतम् प्राप्त हो गया था। अद्य—आज, वन्यफलाशिनः जंगली फलों के आहार से, ते तत्—तुम्हारा यह (शरीर) यशसा समं—यश के साथ (ही) परं कार्श्यं—अत्यधिक कृशता को, परैति—प्राप्त हो रहा है।

हिन्दी अनुवाद—हे राजन्! जो यह तुम्हारा शरीर पहले, ब्राह्मणों के खाने से शेष अन्न (भक्षण करने से) रमणीयता को प्राप्त हो गया था। आज जंगली फलों के आहार से तुम्हारा यह (शरीर) यश के साथ (ही) अत्यधिक कृशता को प्राप्त हो रहा है।

संस्कृत व्याख्या—हे नृप!—हे राजन्, यत् एतत् ते वपुः—पुरोदृश्यमानं त्वदीयं शरीरम्, पुरा—इन्द्रप्रस्थनगरनिवासकाले, द्विजातिशेषेण—ब्राह्मणोच्छिष्टेन्न, अन्धसा—अन्नेन, रामणीयकं—परममनोहरत्वं, उपनीतम्—उपगतम्। अद्य—सम्प्रति, वन्यफलाशिनः—कान्तारोत्पन्नफलानिभक्षणं कुर्वतः, ते तत्—तदेव त्वदीयं शरीरं, यशसा समं—कीर्त्या सह, कार्श्य—कृशत्वं परैति—प्राप्नोति! द्वयमपि अतिक्षीणत्वमुपगतः।

व्याकरण—द्विजातिशेषेण—जन् + क्तिन्—जातिः! शिष्यते इति शेषः (शिष् + घञ्) द्वे जाती (जन्मनो) येषां ते द्विजातयः (बहुव्रीहि) यहाँ द्विजाति केवल ब्राह्मण के लिए प्रयुक्त है। दन्तविप्राण्डजाः द्विजाः इत्यमरः तेषां शेषेण इति द्विजातिशेषेन, रामणीयकं—रमणीयस्य भावः—रामणीयकम् तत्, वन्यफलाशिनः—वने भवं वन्यं (वन + यत्) वन्यं फलं इति वन्यफलम् (कर्मधारय समास) तत् अश्नाति इति वनफलाशी तस्य। **अलंकार**—सहोक्ति।

साम्राज्य सुखों को भोगने वाले युधिष्ठिर को वैभवों का स्मरण दिलाते हुए द्रौपदी कहती है कि मणिजटित पाद पाठ पर रखे जाने वाले चरण अब कुशाग्रों से युक्त वनों में पड़ते हैं—

अनारतं यौ मणिपीठशायिना—
वरञ्जयद्राजशिरःस्त्रजां रजः,
निषीदतस्तौ चरणौ वनेषु ते,
मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषाम्॥४०॥

अन्वय—अनारतं मणिपीठशायिनौ यौ ते चरणौ राजशिर:स्त्रजां रज: अरञ्जयत्। तौ ते चरणौ मृगद्विजालूनशिखेषु वर्हिषां वनेषु निषीदत:।

शब्दार्थ—अनारतं—निरन्तर, मणिपीठशायिनौ—मणिजटितपादपीठ पर स्थित रहने वाले, यौ ते चरणौ—जो तुम्हारे चरणों को, राजशिरस्त्रजां रज: —राजाओं के (द्वारा प्रणाम के समय) शिरों की मालाओं की परागधूलि, अरञ्जयत्—रञ्जित करती थी, तौ ते चरणौ—आपके वे चरण, मृगद्विजालूनशिखेषु—हरिण तथा तपस्वियों के द्वारा छिन्न नोकों वाले, बर्हिषां वनेषु—कुशों के वनों में, निषीदत:—पड़ते हैं।

हिन्दी अनुवाद—निरन्तर मणिजटितपादपीठ पर स्थित रहने वाले जिन तुम्हारे चरणों को राजाओं के शिरों की मालाओं की परागधूलि रञ्जित करती थी आपके वे चरण (इस वननिवास के समय) हरिण तथा तपस्वियों के द्वारा छिन्न नोंकों वाले कुशों के वनों में पड़ते हैं।

भावार्थ—इन्द्रप्रस्थ में आपके जो कोमल चरण रत्नजटितपादपीठ में रहते थे तथा अधीनस्थ राजाओं के द्वारा शिरोप्रणाम कर समादृत किये जाते थे, वही आपके चरण इस वनवास के समय तीक्ष्ण कुशाग्रों वाले कुशवनों में पड़ रहे हैं।

संस्कृत व्याख्या—अनारतं—सततमेव, मणिपीठशायिनौ—मणिजटितपाद-पीठस्थायिनौ, यौ ते चरणौ—त्वदीयं यौ चरणकमलौ, राजशिर: स्त्रजा—प्रणामार्थं नमद्भूपालमौलिमालानां परागधूलिभि:, अरञ्जयंत्—रञ्जिते आस्ताम्। तौ—तावेव ते-तव चरणौ—पादौ, मृगाद्विजालूनशिखेषु—साम्प्रतं हरिणादिभि: तपस्विभि: च छिन्नाग्रभागानां वर्हिषां—कुशानां वनेषु, निषीदत: —येन केन प्रकारेण अतिकष्टम नुभवन्तौ तिष्ठत:।

व्याकरण—मणिपीठशायिनौ—मणिनिर्मितं पीठं मणिपीठम् मणिपीठे शयाते इति मणिपीठशायिनौ, राजशिरस्त्रजां रज:—राज्ञां शिरांसि (ष० तत्पु०) राजशिरसा स्त्रज: इति राजशिरस्त्राज: तासां रज: परागधूलि:। मृगद्विजालूनशिखेषु मृगाश्च द्विजाश्च इति मृगद्विजा: (द्वन्द समास), तै: आलूना: मृगद्विजालूना: तादृशा: शिखा येषु तेषु (बहुव्रीहि) निषीदत:—नि + सद् + लट् प्रथमपुरुष द्विवचन।

अलंकार—अनुप्रास: परिकर:।

द्रौपदी युधिष्ठिर से कह रही है कि आपकी इस दुर्दशा के कारण आपके शत्रु हैं—यह सोचकर मैं अत्यन्त दु:खी हो रही हूँ—

> द्विषन्निमित्ता यदियं दशा ततः
> समूलमुन्मूलयतीव मे मनः।
> परैरपर्यासित-वीर्यसम्पदां
> पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम्॥४१॥

अन्वय—यत् (ते) इयं दशा द्विषन्निमित्ता ततः मे मनः समूलम् उन्मूलयति इव। परैः अपर्यासितवीर्यसम्पदां मानिनां पराभवः अपि उत्सव एव।

शब्दार्थ—यत्—चूँकि (जिस कारण) इयं दशा—यह वनवासरूप दुर्दशा, द्विषद्निमित्ता—शत्रु ही जिसके कारण हैं, शत्रुओं के कारण हुई है। ततः मे मनः—अतः मेरा मन, समूलम् उन्मीलयति इव—मानों मूलतः उत्पादित हुआ जा रहा है (अर्थात् मन वेदनासंयुक्त होकर अत्यधिक व्याकुल हो रहा है) परैः—शत्रुओं से, अपर्यासितवीर्यसम्पदाम्—अपर्यावर्तित (अखण्डित) पराक्रमरूपी सम्पत्ति वाले, मानिनाम्—मनस्वी पुरुषों के लिए, पराभवोऽपि—पराजय भी उत्सव एव—उत्सव ही है।

हिन्दी अनुवाद—चूंकि यह (वनवास रूप) दुर्दशा शत्रुओं के कारण हुई है, अतः मेरा मन मानों मूलतः (धैर्यशान्ति आदि सहित) उत्पादित (उखड़ा) हुआ जा रहा है। शत्रुओं से अपर्यावर्तित (अखण्डित) पराक्रमरूपी सम्पत्ति वाले मनस्वी पुरुषों के लिए पराजय भी उत्सव ही है।

भावार्थ—वर्तमान दुर्दशा शत्रुओं की देन है यह सोचकर मेरा मन फटा जा रहा है, यदि यह विपत्ति दैवकृत होती तो शायद मैं सह लेती। शत्रुओं से पराजित होकर भी मनस्वी लोगों का उत्साह तथा पराक्रम खण्डित नहीं होता। अतः आप उत्साहयुक्त होकर दुर्योधन के लिए कोई उपाय कीजिए।

संस्कृत व्याख्या—यत् इयं दशा - मनसि अनुभूयमाना दुर्दशा, द्विषन्निमित्ता - शत्रुकृता अस्ति, ततः में मनः - अस्मात् कारणात् मम मानसं, समूलम् - निश्शेषं, उन्मूलयति उत्पाटयति इव, परैः - शत्रुभिः, अपर्यासितवीर्यसम्पदाम् -अखण्डितबलपराक्रमसम्पदाम्, मानिनाम् - मनस्विपुरुषाणां, पराभवः अपि-पराजयं अपि, उत्सवः - आनन्दप्रदं भवति।

व्याकरण—द्विषन्निमित्ता - द्विषन्तः निमित्तम् अस्याः सा द्विषन्निमित्ता (बहुव्रीहि समास) समूलम् - मूलेन सह वर्तमानम् इति समूलम् (बहुव्रीहि)

तत् यथा स्थात् तथा, अपर्यासितवीर्यसम्पदाम् - परि + अस् + क्षेपे + णिच् + क्त = पर्यासिता - न पर्यासिता इति अपर्यासिता (नञ् तत्पु०) वीरस्य भावः (वीर + यत्) वीर्यम् तस्य सम्पत् - अपर्यासिता वीर्यसम्पत् येषां तेषां (बहुव्रीहि समास) मानिनाम् - मान् + घञ् भावे - मानः - सः अस्ति एषामिति मानिनाः तेषां मानिनाम् ।

अलंकार—वैधर्म्यप्रयुक्त अर्थान्तरन्यास।

शान्ति का परित्याग कर राजतेज को पुनः धारण कीजिए —

विहाय शान्तिं नृप धाम तत्पुनः,
प्रसीद सन्धेहि वधाय विद्विषाम्।
व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहा,
शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः॥ ४२॥

अन्वय—नृप! शान्तिं विहाय तत् धाम् विद्विषां वधाय पुनः सन्धेहि। प्रसीद। निःस्पृहा मुनयः शत्रून अवधूय शमेन सिद्धिं व्रजन्ति, भूभृतो न।

शब्दार्थ—हे नृप! - हे राजन् !, शान्ति विहाय - शान्ति का परित्याग कर, तत् धाम - उस (प्रख्यात क्षत्रिय)तेज को, विद्विषां बधाय - शत्रुओं के वध के लिए, पुनः सन्धेहि -पुनः धारण करिए, प्रसीद - प्रसन्न हो जाइये। मुनयः - निरभिलाषी (जितेन्द्रिय) मुनिजन, शत्रून् अवधूय - (कामक्रोधादि) शत्रुओं को परास्त करके, शमेन-शान्ति के द्वारा। सिद्धिं व्रजन्ति - (मुक्ति) सिद्धि को प्राप्त करते हैं, राजा लोग नहीं।

हिन्दी अनुवाद—हे राजन् ! शान्ति परित्याग कर, उस (प्रख्यात क्षत्रिय) तेज को, शत्रुओं के वध के लिए पुनः धारण करिए। (अब) प्रसन्न हो जाइये. (क्योंकि) निरभिलाषी (जितेन्द्रिय) मुनिजन ही (कामक्रोधादि) शत्रुओं को परास्त कर, शान्ति के द्वारा (मुक्ति) सिद्धि को प्राप्त करते हैं। राजा लोग (शान्ति से राजकार्यसिद्धि) नहीं प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—मुनिजन ही शमादि षट्कसम्पत्ति से कैवल्य (मोक्ष) प्राप्त कर सकते हैं। राज्याभिलाषी क्षत्रिय बिना छात्रतेज के राज्य को प्राप्त नहीं कर सकता।

संस्कृत व्याख्या—हे नृप! - हे राजन्! शान्तिं विहाय - शान्तिं परित्यज्य, विद्विषां वधाय - शत्रूणां वधाय, तत् धामं - प्रसिद्ध -क्षात्रतेजः, पुनः - भूयोऽपि, सन्धेहि - स्वीकरोतु, प्रसीद - स्वामिनि प्रसीदतु भवान्, निस्पृहाः

मुनयः –निरभिलाषिणः जितेन्द्रियाः मुनिजनाः, शमेन – शान्त्या, शत्रून् – (कामादि) रिपून्, अवधूय – विजित्य, सिद्धि – कैवल्यरूपां सिद्धिं, व्रजन्ति – प्राप्नुवन्ति न भूभृतः – न भूपालाः । कैवल्यकार्यवद्राजकार्यं न शान्तिसाध्यमित्यर्थः।

व्याकरण—शान्ति – शम् + क्तिन् भावे, विहाय – वि + हा + क्त्वा, सन्धेहि – सम् + धा + लोट्लकार (मध्यम पुरुष एक वचन), प्रसीद – प्र + सद् + लोट् लकार (मध्यम पुरुष एक वचन), निस्पृहाः – निरस्ताः दूरीभूताः स्पृहाः आकांक्षाः येषां ते निस्पृहा (बहुव्रीहि समास) अवधूय – अव – धू + ल्यप्।

अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

यदि आप इस शत्रुकृत अपमान को सह लेते हैं तो स्वाभिमान कहाँ रहेगा—

> **पुरःसरा धामवतां यशोधनाः**
> **सुदुःसहं प्राप्य निकारमीदृशम्।**
> **भवादृशाश्चेदधिकुर्वते रतिम्,**
> **निराश्रया हन्त हता मनस्विता॥ ४३॥**

अन्वय—धामवतां पुरःसराः यशोधनाः भवादृशाः ईदृशं सुदुःसहम् निकारम् प्राप्य रतिम् अधिकुर्वते चेत्, हन्त! निराश्रया मनस्विता हता।

शब्दार्थ—धामवतां—तेजस्वियों में, पुरःसराः – अग्रणी, यशोधनाः – यश को ही धन समझने वाले, भवादृशाः – आप जैसे (सर्वशक्तिसम्पन्न), ईदृशं –इस प्रकार के, सुदुःसहम् – अतिअसह्य निकारम् – (शत्रुकृत) अपमान को, प्राप्य – प्राप्त करके, चेत् – यदि रतिम् – सन्तोष, अधिकुर्वते – कर लेते हैं, हन्त – खेद की बात है कि निराश्रया मनस्विता, हता – मनस्विता निराधार होकर समाप्त हो जायेगी।

हिन्दी अनुवाद—तेजस्वियों में अग्रणी, यश को ही धन समझने वाले, आप जैसे (सर्वशक्तिसम्पन्न) इस प्रकार के अति असह्य (शत्रुकृत) अपमान को प्राप्त करके यदि सन्तोष कर लेते हैं, तो खेद की बात है कि मनस्विता निराधार होकर समाप्त हो जायेगी।

भावार्थ—आप तेजस्वियों में अग्रगण्य हैं। अतः शत्रुकृत अपमान को सहन न कर शत्रु से बदला लेने तथा राज्य पुनः हस्तगत करने के लिए

प्रतिकार करना चाहिए। यदि आप जैसे लोग तिरस्कार और अपमान को सहन कर शान्ति के पुजारी बन जायेंगे, तो स्वाभिमान का ठौर ही समाप्त हो जायेगा।

संस्कृत व्याख्या—धामवतां—तेजस्विनां, पुरस्सरः—अग्रेसराः, यशोधनाः—कीर्तिधनाः भवादृशाः—भवत्सदृशाः सर्वसाधनगुणसम्पन्नाः महाजनाः, सुदुःसहम्—अतिअसह्यम्, ईदृशं-एवंविधं, निकरम्—शत्रुकृतापमानं प्राप्य—समावाप्य, चेत यदि रतिम् अधिकुर्वते—सन्तोषं शांति च स्वीकुर्वन्ति। तर्हि हन्त—खेदस्य विषयोऽयम् यत् मनस्विता—स्वाभिमानता, निराश्रया—निरवलम्बा सती, हता—मृता इव भविष्यति।

व्याकरण—धामवताम्—धामः (तेजः) अस्ति एषामिति धामवन्तः (धामन् + मतुप् + प्रथमा० बहुव०) पुरःसराः—पुरः सरन्तीति पुरःसराः (पुरस् + सृ + ट) यशोधनाः—यशः एव धनमेषां ते यशोधनाः (बहुव्रीहि) भवादृशाः—देखें २८ श्लोक, सुदुस्सहम्—सु अतिशयेन दुस्सहं सुदुस्सहम् देखें श्लोक २४, मनस्विता—प्रशस्तं मनः एषामिति मनस्विनः तेषां भावः मनस्विता, निराश्रयाः, निर्गतः आश्रयः यस्याः सा निराश्रया (बहुव्रीहिः)

अलंकार—परिकरः।

द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है कि यदि आप शान्ति का वरण करना चाहते हैं, तो राजचिह्न धनुष का परित्याग करें—

अथ क्षमामेव निरस्तविक्रम—
श्चिराय पर्येषि सुखस्य साधनम्।
विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकं,
जटाधरः सञ्जुहुधीह पावकम्॥४४॥

अन्वय—अथ निरस्तविक्रमः (सन्) क्षमाम् एव चिराय सुखस्य साधनं पर्येषि (तर्हि) लक्ष्मीपतिलक्ष्मीकार्मुकम् विहाय जटाधरः सन्, इह पावकं जुहुधि।

शब्दार्थ—अथ—अथवा, निरस्तविक्रमः—पराक्रमविहीन होकर क्षमाम् एव चिराय—क्षमा को ही चिरकाल तक, सुखस्य साधनं पर्येषि—सुख का साधन समझते हैं, लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकम्—राजचिह्न धनुष को, विहाय—छोड़कर, जटाधरः सन्—जटाधारी होकर, इह—यहीं वन में, पावकम्—अग्नि को, जुहुधि—हवन करें।

हिन्दी अनुवाद—अथवा (यदि) पराक्रमविहीन होकर क्षमा को ही चिरकाल तक सुख का साधन (आप) मानते हैं (तो) राजचिह्न धनुष को छोड़कर जटाधारी होकर यहीं, वन में, अग्नि को हवन करें।

भावार्थ—यदि आप जीवनपर्यन्त शान्ति को ही सुख का साधन समझते हैं, तो शत्रुकृत तिरस्कार को सहन करें और राजचिह्न धनुष का त्याग करिये तथा मुनिवृत्ति के अनुरूप हवन के द्वारा अग्निदेव को यहीं वन में ही प्रसन्न कीजिए। तात्पर्य यह है कि राजधर्म के अनुसार आप को उत्साह सम्पन्न होकर खोये हुए राज्य को जीतकर शत्रुकृत अपमान का प्रतिशोध करना चाहिए।

संस्कृत व्याख्या—अथ—अथवा, निरस्तविक्रमः—पराक्रमविहीनस्त्वम्, क्षमामेव—शान्तिमेव चिराय—चिरकालेन जीवनपर्यन्तं, सुखसाधनं—आनन्दोपायं, पर्येसि—मन्यसे, तर्हि लक्ष्मपतिलक्ष्म—राजचिह्नभूतं, कार्मुकम्—धनुः, विहाय—परित्यज्य, जटाधरः सन्—मुनिवृत्तिमवलम्ब्य जटाधारी सन् इह—अस्मिन् वने, पावकं—अग्निदेवं जुहुधि—हवनं कुरु। यदि क्षत्रियधर्मपालनेऽसमर्थो भवान् तर्हि धनुषा किं प्रयोजनं, धनुषं परित्यज्य हव्यप्रदानेन पावकं पोषय।

व्याकरण—निरस्तविक्रमः—निरस्तः विक्रमः यस्य सः (बहुव्रीहि) लक्ष्मीपतिलक्ष्म—लक्षयति पश्यति नीतिमन्तं पुरुषं इति लक्ष्मीः लक्ष्म्याः पतिः (षष्ठी तत्पुरुष) लक्ष्मीपतेः लक्ष्म (तत्पुरुष) कार्मुकं—कर्मणि प्रभवति इति कार्मुकम् (कर्म + उकञ्) जुहुधि—हु + लोट् हि।

अलंकार—अनुप्रास।

अपकारी शत्रुओं के लिए सत्यप्रतिज्ञ रहना समुचित नहीं है—

> **न समयपरिरक्षणं क्षमं ते,**
> **निकृतिपरेषु परेषु भूरिधाम्नः।**
> **अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशा,**
> **विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि ॥४५॥**

अन्वय—परेषु निकृतिपरेषु (सत्सु) भूरिधाम्नः ते समयपरिरक्षणं न क्षमम्। हि विजयार्थिनः क्षितीशाः अरिषु सोपधि सन्धिदूषणानि विदधति।

शब्दार्थ—परेषु—शत्रुओं के, निकृतिपरेषु—(आपके प्रति निरन्तर) अपमान में तत्पर हो जाने पर, भूरिधाम्नः—परम तेजस्वी, ते—आपके लिए, समयपरिरक्षणं—(वनवास की) प्रतिज्ञा की रक्षा करना, न क्षमम्—समुचित

नहीं है, हि—क्योंकि, विजयार्थिनः क्षितीशाः—विजय की अभिलाषा वाले राजा लोग, अरिषु—शत्रुओं के विषय में, सोपधिसन्धिदूषणानि—कपटपूर्वक प्रतिज्ञाभंग, विदधति—कर देते हैं।

हिन्दी अनुवाद—शत्रुओं के (आपके प्रति निरन्तर) अपमान में तत्पर हो जाने पर परमतेजस्वी आपके लिए (वनवास की) प्रतिज्ञा की रक्षा करना समुचित नहीं है। क्योंकि विजय की अभिलाषा वाले राजा लोग शत्रुओं के विषय में कपटपूर्वक प्रतिज्ञाभंग कर देते हैं।

भावार्थ—वनवास की अवधि में भी दुर्योधन हमारा अपमान कर रहा है, इसलिए आपकी १३ वर्ष तक वनवास की प्रतिज्ञारक्षण उचित नहीं है विजयाभिलाषी महीपाल कपटपूर्वक प्रतिज्ञा तोड़ देते हैं। इस समय ऐसी स्थितियाँ हैं। अतः आपको प्रतिज्ञाभंग कर दुर्योधन के ऊपर आक्रमण करना चाहिए।

संस्कृत व्याख्या—परेषु—शत्रुषु, निकृतिपरेषु—शाठ्यसंलग्नेषु, भूरिधाम्नः—महापराक्रमशालिनः, ते—युधिष्ठिरस्य, समयपरिरक्षणं—(वनवास) प्रतिज्ञापरिपालनम्, न क्षमं—नोचितं, हि—यतः, विजयार्थिनः—विजिगीषवः क्षितीशाः भूपालाः, अरिषु—शत्रुविषये, सन्धिदूषणानि—प्रतिज्ञाविखण्डितानि सोपधि—सकपटं, विदधति—विधास्यति।

व्याकरण—निकृतिपरेषु—निकृतिः—नि + कृ + क्तिन् भावे, परं-प्रधानं एषाम् निकृतिपराः तेषु (बहुव्रीहि), भूरिधाम्नः भूरि धाम अस्यास्ति (बहुव्रीहि) समयपरिरक्षणं—समयः शपथः। देखें अमरकोष—'समयः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविद' समयस्य परिरक्षणम् इति समयपरिरक्षणं, विजयार्थिनः—विजयम् अर्थयन्ते इति विजयार्थिनः सोपधि—उपधिः व्याजः (बहाना) देखें अमरकोष—'उपाधिः व्याजचक्रयोः, उपधीयते इति उपधिः तेन सह वर्तमानम् इति सोपधि (बहुव्रीहि) तत् यथा स्यात् तथा। सन्धिदुषणानि—सन्धीयते इति सन्धिः तस्य दूषणानि इति सन्धिदूषणानि।

अलंकार—अर्थान्तरन्यासः। इस श्लोक में छन्द परिवर्तन है। इसमें पुष्पिताग्रा छन्द है।

द्रौपदी युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित करते हुए कहती है कि यदि आप युद्धोत्साहसम्पन्न होंगे, तो पुनः सिंहासन आपको उपलब्ध होगा—

> **विधिसमयनियोगाद्दीप्तिसंहार जिह्मं,**
> **शिथिलवसुमगाधे मग्नमापत्पयोधौ,**
> **रिपुतिमिरमुदस्योदीयमानं दिनादौ,**
> **दिनकृतमिव लक्ष्मीसस्त्वां समभ्येतु भूयः ॥४६ ॥**

अन्वय—विधि समयनियोगात् अगाधे आपत्पयोधौ मग्नं दीप्तिसंहारजिह्म शिथिलवसु रिपुतिमिरम् उदस्य उदीयमानम् त्वाम् दिनादौ दिनकृतमिव लक्ष्मीः भूयः समभ्येतु।

शब्दार्थ—विधिसमयनियोगात्—भाग्य और समय के नियोग (नियमन) वश, अगाधे—अथाह, आपत्पयोधौ—विपत्तिरूपी समुद्र में मग्नः—डूबे हुए, दीप्तिसंहारजिह्म—सूर्यपक्ष में—प्रकाश विनष्ट होने से कान्तिहीन, युधिष्ठिर पक्ष में—प्रताप के विनष्ट होने से अप्रसन्न, शिथिलवसु—(सूर्यपक्ष में) मन्द कान्ति वाला, (युधिष्ठिर के पक्ष में)—शिथिल (अल्प) धन वाले, रिपुतिमिरम्—(सूर्य पक्ष में)—शत्रु के समान अन्धकार को, युधिष्ठिर (पक्ष में)—अन्धकार के समान शत्रु को, उदस्य—दूर करके, विनष्ट करके, उदीयमानम्—(सूर्य के पक्ष में) उदित होते हुए, (युधिष्ठिर के पक्ष में)—उन्नति प्राप्त करते हुए, त्वाम्—युधिष्ठिर की, दिनादौ—(सूर्य के पक्ष में) प्रातःकाल में, (युधिष्ठिर के पक्ष में) भाग्योदय काल में, दिनकृतमिव—सूर्य की भांति लक्ष्मी—सूर्य के पक्ष में शोभा, युधिष्ठिर के पक्ष में—राजलक्ष्मी को, भूयः—पुनः, समभ्येतु—प्राप्त हो।

हिन्दी अनुवाद—भाग्य एवं समय के नियोग (नियमन) वश अथाह विपत्तिरूपी सागर में डूबे हुए, प्रकाश विनष्ट होने से कान्तिहीन, मन्दप्रभ (होने पर भी) शत्रु के समान अन्धकार को दूर करके, (पुनः) उदित होते हुए प्रातः-कालीन शोभा को प्राप्त सूर्य की भाँति (युधिष्ठिर के पक्ष में) भाग्य एवं समय के नियोग (नियमन) वश अथाह विपत्तिरूप सागर में डूबे हुए प्रताप के विनष्ट होने से अप्रसन्न, शिथिल (अल्प) धन वाले, अन्धकार के समान शत्रु को विनष्ट करके उन्नति को प्राप्त करने वाले आपको भाग्योदय काल में राज्यलक्ष्मी पुनः प्राप्त हो।

भावार्थ—भाग्य और समय के फेर से इस समय आप हतप्रभ हैं। परन्तु जिस प्रकार सूर्य डूबने के पश्चात् प्रयासरत रहता हुआ पुनः दिनलक्ष्मी को प्राप्त करता है, उसी प्रकार आप भी उद्योगी बनें, जिससे साम्राज्य लक्ष्मी की पुनः प्राप्ति हो।

संस्कृत व्याख्या—विधिसमयनियोगात्—दुर्दैव कालवशात् च। अगाधे—दुस्तरे। आपत्पयौधौ—विपत्तिसमुद्रे। मग्नं—निमज्जितं। दीप्तिसंहारजिह्मं-आतपविनाशेन विकलीभूतम, तेजविनाशखिन्नचित्तम्। शिथिलवसुम्—मन्द किरणम्, अल्प धनं। रिपुतिमिरम्—शत्रुवदन्धकारम्, अन्धकारवदभीषणः शत्रुः। उदस्य—विनष्टं कृत्वा; उदीयमानम्—उदयं गच्छन्तं, अभ्युदयं कुर्वन्तं त्वां—भवन्तम् युधिष्ठिरं। दिनादौ—प्रातःकाले। दिनकृतमिव—सूर्यमिव। लक्ष्मीं—शोभाम्, राजलक्ष्मीः। भूयः—पुनरपि, समभ्येतु—प्राप्नोतु।

व्याकरण—विधिसमयनियोगात्—विधिश्च समयश्च इति विधिसमयौ (द्वन्दसमास) तयोः नियोगः (नियमनः) विधिसमयनियोगः, दीप्तिसंहारजिह्मः —दीप्ते आतपस्य (प्रतापस्य) संहारनाशः इति दीप्तिसंहारः तेन जिह्मः शिथिलवसुम्—शिथिलं वसुः रश्मि (धनं वा) यस्य सः तं शिथिलवसुम्, रिपुतिमिरम्—रिपुभूतं तिमिरं (रिपुः तिमिरम् इव) दिनादौ—दिनस्य आदिः इति दिनादिः तस्मिन्, दिनकृतमिव—दिनं करोति इति दिनकृत् तमिव।

अलंकार—उपमा अलंकार। कवि ने इस सर्ग के प्रथम श्लोक में 'श्री' शब्द तथा अन्तिम श्लोक में लक्ष्मी पद का प्रयोग किया है जैसा कि महाभाष्यकार पतंजलि का कथन है—मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषकाणि आयुष्मत्पुरुषकाणि च भवन्ति अध्येतारश्च प्रवक्तारो भवन्ति।

इस श्लोक में मालिनी छन्द है। महाकाव्य के लक्षणों में आचार्य विश्वनाथ ने एक लक्षण सर्गान्त में छन्दपरिवर्तन भी बताया है। इस सर्ग के अन्तिम दो श्लोक में छन्द परिवर्तन किया गया है।

———

महत्वपूर्ण सूक्तियों की सन्दर्भ सहित हिन्दी में व्याख्या

१. सूक्ति—न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः।

सन्दर्भ—प्रस्तुत सूक्ति महाकवि भारविकृत किरातर्जुनीयम् महाकाव्य के प्रथम सर्ग के दूसरे श्लोक से उद्धृत है।

प्रसंग—कवि वर्णन करता है कि ब्रह्मचारी वेष को धारण करने वाला गुप्तचर युधिष्ठिर के द्वारा दुर्योधन के राज्य की शासन व्यवस्था की जानकारी करने के लिए भेजा गया था। दुर्योधन के राज्य का वृत्तान्त ज्ञात करके वापस आने पर युधिष्ठिर से प्रजा के कल्याण के लिए दुर्योधन के द्वारा की गई सुव्यवस्थाओं तथा शासन पद्धति का वर्णन करते हुए गुप्तचर का मन लेशमात्र भी व्यथा से युक्त नहीं हुआ।

व्याख्या—वनेचर युधिष्ठिर का हितेच्छु है। अतः उसने दुर्योधन के प्रजा के प्रति सद्व्यवहार को युधिष्ठिर से यथावत् कहा। उसने यह नहीं सोचा कि सत्य कहने से युधिष्ठिर को सुखानुभूति नहीं होगी। न ही उसने सह सोचा कि सत्यकथन से युधिष्ठिर का उत्साह खण्डित हो जायेगा। सामान्य रूप से लोक में यह देखा जाता है कि स्वार्थी तथा लोभी प्रकृति के लोग चिकनी चुपड़ी बातें कर अपने स्वामी को प्रसन्न करते हैं। परन्तु क्षणिक प्रसन्नता के लिए बोला गया असत्य वचन भविष्य काल में स्वामी की पराजय का कारण बनता है। परन्तु वनेचर न केवल शुभचिन्तक है वरन् वह एक आदर्श, सुयोग्य एवं निर्भीक गुप्तचर है अतः वह कहता है कि हितैषी पुरुष मिथ्या और प्रिय वचन बोलने की इच्छा नहीं करते हैं।

२. सूक्ति—स सौष्ठवौदार्य विशेषशालिनी विनिश्चितार्थामितिवाचमाददे।

प्रसंग—युधिष्ठिर की आज्ञा को प्राप्त कर वनेचर ने दुर्योधन की शासन पद्धति का जो निरूपण किया उसमें किस प्रकार की वाणी का आश्रय लिया उसका वर्णन करते हुए भारवि कहते हैं—

व्याख्या—शत्रुओं के विनाश के लिए प्रयत्नाभिलाषी महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर एकान्त में, उस वनेचर ने शब्दसामर्थ्य एवं अर्थगौरव के वैशिष्ट्य से समलङ्कृत एवं विशेष रूप से निर्णीत तात्पर्य वाली वाणी को बोला।

वनेचर की वाणी की विशेषताएँ है--सौष्ठव एवं औदार्य की विशेषताओं से विभूषित एवं प्रमाण सिद्ध वाणी। सौष्ठव का तात्पर्य है--शब्द वैचित्र्य तथा औदार्य का अर्थ है--अर्थगाम्भीर्य। भारवि यहाँ पर एक मनोवैज्ञानिक तथ्य उद्‌घाटित करना चाहते हैं। वह यह कि सत्य कटु एवं असह्य होता है और सत्य निवेदन करते समय वाणी के कठोर होने की सम्भावना रहती है परन्तु वनेचर एक संयमित तथा आत्मनियंत्रण करने में सर्वथा समर्थ है इसलिए ऐसे समय में भी वनेचर की वाणी कठोर एवं कटु नहीं हुई अपितु सौष्ठव गुण अर्थात् शब्द सौन्दर्य से युक्त रही। दूसरी विशेषता है अर्थ गौरव अर्थात् अर्थ अर्थगाम्भीर्य. कहने का तात्पर्य यह है कि गम्भीर प्रसंग के अनुरूप ही अर्थ की गंभीरता बनी रही। वनेचर ने अनावश्यक, निरर्थक एवं व्यर्थ शब्दों का प्रयोग कदापि नहीं किया। वनेचर के द्वारा कहा गया प्रत्येक शब्द सार्थक था जिससे युधिष्ठिर को उसकी बात को सुनने व समझने में किसी भी तरह की भ्रान्ति या संशय या कठिनाई न हो। साथ ही वनेचर की वाणी प्रामाणिक तथ्यों से युक्त थी। उसमें एक भी ऐसी नहीं थी, जो अनेक प्रकार से पुष्ट प्रमाण सिद्ध एवं युक्तियुक्त न हो।

३. सूक्ति—हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।

प्रसंग—दुर्योधन के राज्य के वृत्तान्त का निवेदन करने के पूर्व वनेचर युधिष्ठिर से क्षमायाचना करता है। राजा को प्रजा के मनोभावों को, प्रजा के सुख तथा दुःख को एवं राज्य की स्थिति का ज्ञान गुप्तचरों के माध्यम से ही होता है। इसीलिए राजा को चारचक्षुषः अर्थात् गुप्तचररूपी नेत्रों वाला कहा गया है। अतः गुप्तचरों को राजा से धोखेबाजी नहीं करनी चाहिए। सुयोग्य एवं सच्चे गुप्तचरों के द्वारा राजा तथा राज्य दोनों का कल्याण होता है।

व्याख्या—वनेचर के मन में यह विचार आया कि सत्य बात का निवेदन करने से, एवं दुर्योधन की सुदृढ़ राज्यव्यवस्था का वर्णन करने से, युधिष्ठिर को दुःख होगा तथा इस बात की सम्भावना है कि वे क्रोध में आ जायँ। कदाचित् मुझे दण्ड दे दें। इसीलिए कुछ भी कहने के पूर्व, युधिष्ठिर के क्रोध से बचने के लिए वह क्षमा याचना करते हुए कहता है कि मेरे द्वारा कही बात, चाहे अप्रिय लगे या प्रिय आप उसको सहन करें क्योंकि कल्याणकारी तथा मन को अच्छे लगने वाले वचन अत्यन्त कठिनता से प्राप्त होते हैं,। इसलिए कहा गया हैं—'अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।

इस श्लोक में प्रथम तीन पंक्तियों के विशेष तथ्य का समर्थन चतुर्थ पंक्ति में सामान्य सुभाषित वचन से किया गया है। अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

४. सूक्ति—सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः।

प्रसंग—जो स्वामी को समुचित उपदेश नहीं देता वह कुमित्र है, जो हितैषी की बात नहीं सुनता वह कुत्सित स्वामी है। क्योंकि राजा और मंत्रियों के परस्पर अनुकूल रहने पर ही सभी सम्पत्त्तियाँ अनुराग करती हैं।

व्याख्या—यदि मन्त्री एवं अन्य हितैषी जन राजा को सत्परामर्श नहीं देते तो वह मंत्री आदि कुत्सित अर्थात् बुरा मंत्री होता है तथा जो स्वामी अपने मंत्रियों अथवा हितैषियों के सत्परामर्श को शान्ति एवं धैर्यपूर्वक नहीं सुनता है तथा यदि कटु सत्य हो तो उसे सुनकर कुपित हो जाता हो तो वह कुत्सित राजा अर्थात् बुरा स्वामी है। क्योंकि राजा तथा मंत्री परस्पर अनुकूल रहते हैं, एक दूसरे की बात को समझते हों, तभी राज्य में एवं राजा के पास समस्त सम्पत्तियाँ व वैभव रहते हैं।

इस कथन में भारवि के राजनीतिक ज्ञान की झलक मिलती है। वनेचर युधिष्ठिर से यह अपेक्षा रखता है कि उसके द्वारा कहा गया विवरण ध्यानपूर्वक सुनें भले ही वह विवरण सत्य एवं कटु हो। जब दुर्योधन की यथार्थ वस्तुस्थिति से युधिष्ठिर परिचित होंगे तभी उसका समुचित प्रतिकार कर सकेंगे।

इसीलिए वनेचर यह स्पष्ट कर रहा है यदि मंत्री तीर घाट चलेगा और राजा मीर घाट चलेगा अर्थात् मंत्री तथा राजा में विचार वैमत्य रहेगा तो राज्य में सुख तथा समृद्धि कदापि सम्भव नहीं है।

प्रस्तुत श्लोक में कार्य के कारण का समर्थन किया गया है अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है। राजा तथा मंत्री की परस्पर अनुकूलता रूप कारण का समन्वित लाभ रूपी कार्य से समर्थन किया गया है।

५. सूक्ति—सहादनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः।

प्रसंग—युधिष्ठिर के द्वारा भेजा गया ब्रह्मचारी वेषधारी गुप्तचर वनेचर दुर्योधन के राज्य की स्थिति का आकलन कर द्वैतवन में निवास कर रहे युधिष्ठिर से, निवेदन कर रहा है।

व्याख्या—वनेचर युधिष्ठिर से कहता है कि जो सेवक राजा को उचित उपदेश नहीं देता है वह मित्र कहलाने योग्य नहीं है तथा जो राजा सेवक के द्वारा दी गई उचित मंत्रणा को सुनकर तदनुरूप आचरण नहीं करता वह योग्य स्वामी नहीं कहा जा सकता है। अतः मेरे कथन को आपको सुनना चाहिए। क्योंकि जिस राज्य के राजा एवं मंत्री परस्पर विचार, रीति, नोति, में विरोध भाव रखते हों तो उस राज्य में साम्राज्य लक्ष्मी, चिरकाल तक अक्षुण्ण नहीं

रहेगी। क्योंकि मंत्रियों तथा राजाओं के परस्पर अनुकूलता रहने पर ही सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ सदैव अनुराग करती है अर्थात् राज्य सुख-समृद्धि एवं शान्ति से परिपूर्ण रहता है। अतः राजा को मंत्री का सत्परामर्श मानना चाहिए। यदि राजा तथा मंत्री तीरघाट एवं मीरघाट चलेंगे तो राज्य सुदृढ़ कैसे रह सकता है? गोस्वामी तुलसीदास ने ठीक ही कहा है—जहाँ सुमति तहाँ सम्पति नाना। जहाँ कुमति तहाँ विपति निधाना।

६. सूक्ति—वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः।

प्रसंग—युधिष्ठिर से पराजय की आशंका से ग्रस्त होने के कारण वह कुटिल दुर्योधन आपको (युधिष्ठिर को) जीतने की इच्छा से अपने दान इत्यादि गुणसम्पत्ति से अपना यश फैला रहा है। दुष्टजनों के साथ संसर्ग की अपेक्षा सज्जनों के साथ विरोध भी श्रेष्ठ होता है क्योंकि सज्जनों के साथ विरोध से ऐश्वर्य की अभिवृद्धि होती है।

व्याख्या—दुर्योधन को इस बात की शंका है कि युधिष्ठिर के साथ संभावित युद्ध में प्रजा पाण्डुपुत्रों का साथ दे सकती है इसलिए दुर्योधन कुटिलता के साथ दया दाक्षिण्यादि गुणों के द्वारा यश का विस्तार कर रहा है।

कहने का भाव है कि सज्जन पुरुषों के साथ जो व्यक्ति विरोध करेगा वह सज्जन पुरुषों को पराजित करने के लिए, उसे अधिक गुणी दिखाने के लिए दयालुता, दानशीलता तथा उदारता का प्रदर्शन करेगा। इस प्रकार कवि यह कहना चाहता है कि महात्माओं के साथ विरोध करने पर उनके सद्गुणों को अपनाने से दुष्ट व्यक्ति का भी कल्याण होता है। जब कि दुष्ट व्यक्ति के साथ वैरभाव होने पर दुष्ट जन की तरह ही वह अन्याय अनीति के मार्ग का अनुगमन करेगा जिससे किसी का कल्याण नहीं होने वाला है।

वनेचर इसलिए दुष्टजन के संसर्ग की अपेक्षा महात्माओं के साथ विरोध को श्रेष्ठ निरूपित करता है।

७. सूक्ति—न बाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम्।

प्रसंग—यथायोग्य विभाजन करके समान पक्षपातपूर्वक अनुराग से, अनासक्तिपूर्वक सेवन किये जाते हुए, दुर्योधन के गुणों में अनुराग के कारण, मानों मैत्रीभाव को प्राप्त हुए, इसके त्रिगण (धर्म, अर्थ, काम) परस्पर बाधा नहीं पहुँचाते हैं।

व्याख्या—वनेचर कहता है कि दुर्योधन धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पुरुषार्थों का सेवन समय निर्धारित कर करता है। अर्थात् धर्मसेवन इतने समय तक, अर्थार्जन इतने समय तक, तथा कामोपभोग इतने समय तक करना है ऐसा

समय का उचित विभाजन करके वह तीनों का सेवन अनासक्त भाव से प्रजा के कल्याणार्थ एवं लोकानुरञ्जन की भावना से करता है। यद्यपि यह भी सच है कि धर्म अर्थ तथा काम परस्पर विरोधी हैं परन्तु दुर्योधन के द्वारा समान भाव से सेवन किये जाने से मानो मित्रता को प्राप्त होकर आपस में टकराते नहीं हैं।

लोक में ऐसा देखा जाता है कि धर्माराधन में संलग्न व्यक्ति अर्थ तथा काम से अनासक्त हो जाता है। अर्थोपार्जन में संलग्न व्यक्ति धर्म से विमुख होता जाता है तथा कामोपभोग में संलग्न व्यक्ति धर्म तथा अर्थ से प्राय: विमुख हो जाता है। इसीलिए इन तीनों को परस्पर विरोधी कहा जाता है। किन्तु दुर्योधन के द्वारा इन तीनों का सेवन आनुपातिक पद्धति से किये जाने पर उनका परस्पर विरोध भाव समाप्त हो जाता है। किसी एक में संलग्न व्यक्ति जघन्य कहा जाता है। जैसा कि कहा गया है—धर्मार्थकामा: सममेवसेव्या: यो ह्येकसक्त: स जनो जघन्य:।

८. सूक्ति—अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता।

प्रसंग—वनेचर युधिष्ठिर से निवेदन करता है कि शत्रुरूप राजाओं के समाप्त हो जाने पर सुदृढ़ भविष्य वाले समुद्रपर्यन्त भूमण्डल को प्रशासित करता हुआ भी वह सुयोधन आप (युधिष्ठिर) से आने वाली विपत्तियों का, भय का विचार करता रहता है अर्थात् चिन्ताग्रस्त रहता है। अहो! बलवान के साथ किया गया वैर-विरोध का अन्त अनिष्टकारक होता है।

व्याख्या—तात्पर्य यह है कि यद्यपि दुर्योधन समस्त भूमण्डल का राजा है जिससे राजकोष की धन-सम्पत्ति, समस्त सेना इत्यादि का स्वामी है परन्तु वह युधिष्ठिर से भयभीत रहता है। वनेचर इस श्लोक में यह स्पष्ट कर रहा है कि राज्यरहित युधिष्ठिर आज भी सबल है क्योंकि उसके पास अर्जुन धनुर्धारी तथा गदायुद्धपारंगत भीम इत्यादि अन्य लोगों के साथ-साथ साक्षात् धर्म भी उनके साथ है। अत: आप अपने को शक्तिहीन न समझें।

युधिष्ठिर की शक्ति, बल एवं सामर्थ्य से समस्त भूमण्डल का स्वामी दुर्योधन भी भय से व्याकुल रहता है। दुर्योधन को इस बात का भय है कि कहीं युधिष्ठिर आक्रमण कर मेरा राज्य मुझसे छीन न लें। इसी को मन में गुनगुनाता हुआ अशान्त रहता है।

भारवि इस सूक्ति के माध्यम से यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि बलवान व्यक्ति के साथ विरोध नहीं करना चाहिए क्योंकि बलशाली के साथ विरोध का अंत दु:ख होता है। इसलिए दुर्योधन का अंत भी बुरा होगा।

९. सूक्ति—प्रवृत्तिसाराः खलुमादृशां गिरः।

प्रसंग—आपके प्रति कपटाचरण करने के लिए तत्पर उस दुर्योधन के विषय में करणीय प्रतिकार का शीघ्र ही विधान कीजिए। दूसरे के द्वारा कहे गये वचनों का संग्रह करते हुए मुझ जैसे गुप्तचरों की वाणी निश्चित रूप से वार्तातत्व वाली होती है।

व्याख्या—वनेचर के कहने का तात्पर्य यह है कि गुप्तचर के द्वारा सूचनापरक वचनों की उपयोगिता एवं सार्थकता तभी है जब उन सूचनाओं पर अविलम्ब रूप से उचित कार्यवाही की जाय क्योंकि विलम्ब से की गई कार्यवाही से उनका यथोचित लाभ नहीं मिल पाता है? जैसा कि कहा भी गया है।

कालो पिबति हि तद्रसः। अर्थात् कालक्षेप कार्य के रस को पी जाता है अर्थात् अभीप्सित फल नहीं मिल पाता है।

वनेचर कहता है कि गुप्तचर का कार्य और दायित्व शत्रु की गतिविधियाँ नीति एवं बल का अनुमान दूसरों से कही हुई बातों को संग्रह करके स्वामी को बताना है। स्वामी का कर्तव्य है कि सूचनाओं के आधार पर शीघ्र कार्यवाही करें।

१०. सूक्ति—व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।

प्रसंग—विवेकहीन वे व्यक्ति पराजय को प्राप्त होते हैं, जो कपटी पुरुषों के साथ कपटाचरण नहीं करते, क्योंकि कपटी दुष्ट पुरुष उसके अन्दर प्रवेश कर, हृदय में स्थान बनाकर, आत्मीय बनकर उसे उसी प्रकार मार डालते हैं जैसे कवचविहीन शरीर में बाण अन्दर तक घुस कर उसे मार डालता है।

व्याख्या—वनेचर के द्वारा दुर्योधन के राज्य विषयक सुदृढ़ता तथा समृद्धि से अवगत युधिष्ठिर ने उस वृत्तान्त को भाइयों की उपस्थिति में द्रौपदी को सुनाया। इन समाचारों से मर्माहता द्रौपदी नीति चातुर्य के साथ युधिष्ठिर को शठ के साथ शठता का आचरण करने के लिए प्रेरित करते हुए स्पष्ट करती है कि दुर्योधन ने आपके राज्य का अपहरण द्यूतक्रीड़ा के छल-कपट से ही किया था। छल कपट का आश्रय लेकर ही उसने पाण्डवों को प्रतिज्ञाबद्ध कर १३ वर्ष के अज्ञातवास में भेजा था। अतः आप उस सन्धि को तोड़कर दुर्योधन का प्रतिकार करें, आक्रमण करें, क्योंकि शठ लोग सीधे लोगों से आत्मीयता स्थापित कर उनको उसी प्रकार मार डालते हैं जिस प्रकार कवचविहीन

असुरक्षित व्यक्ति को बाण उसकी देह में घुसकर मार डालते हैं। अतः कपटी व्यक्ति के साथ कपटाचरण करने में अनैतिकता नहीं होती है। इसलिए कहा गया है 'शठे शाठ्यं समाचरेत्।' अन्यत्र भी कहा गया है 'आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः'।

११. सूक्ति—अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः।

प्रसंग—सफल क्रोध सम्पन्न, विपत्तियों के विनाशक राजा के वश में प्राणी स्वयं ही हो जाता है। क्रोध शून्य प्राणी के स्नेह पर भी लोगों की आस्था नहीं होती, न ही शत्रुभाव रखने पर लोग उससे डरते हैं।

व्याख्या—दुर्योधन की सफलता को सुनकर, अपनी मनोव्यथाओं को रोकने में असमर्थ द्रौपदी ने युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीपित करने के लिए स्मरण दिलाया कि आपने अपने हाथ राज्य और अपनी स्त्री (द्रौपदी) को गँवा दिया फिर भी मनस्वी पुरुषों के द्वारा निन्दित मार्ग में शत्रुकृत दुर्दशा का अनुभव करते हुए भी आपकी क्रोधाग्नि क्यों प्रज्ज्वलित नहीं होती।

क्रोधशून्य व्यक्ति में आत्मीय जन न तो आस्था और श्रद्धा रखते हैं न ही अन्य जन भय खाते हैं इसलिए समाज में क्रोधरहित न तो आदर का पात्र होता है न ही श्रद्धा का। आप जैसे ही वह भी पग-पग पर अपमान सहता रहता है।

मनुष्य के काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर ये छः शत्रु हैं यद्यपि क्रोध अरिषड्वर्ग में होने से निन्दायोग्य है, परन्तु शासन चलाने वाले भूपालों से क्रोधरहित होने की अपेक्षा नहीं की जाती। संसार में जब सामान्य व्यक्ति समाज में क्रोधरहित होकर सम्मान का भागी नहीं हो पाता तो क्रोधरहित राजा कैसे राष्ट्र एवं प्रजा के सम्मान का भागी बनेगा। लंका पहुंचने के लिए पुल निर्माण के लिए मार्ग की याचना करने वाले राम की अवहेलना समुद्र ने की। लेकिन यह सर्व ज्ञात है कि कोपाविष्ट राम के द्वारा शर-संधान करने पर भयभीत समुद्र समित्पाणि होकर उपस्थित हुआ। अतः राजा को यथावसर क्रोध अवश्य ही करना चाहिए।

———

किरातार्जुनीयम् पर आधारित महत्वपूर्ण प्रश्नों के संस्कृत में अपेक्षित लघूत्तरीय प्रश्न

प्रश्न (१) युधिष्ठिरेन दुर्योधनस्य कीदृशम् व्यवहारं वेदितुम् वनेचरं नियुक्तवान्?

उत्तरम– युधिष्ठिरेन दुर्योधनस्य प्रजाविषयकं व्यवहारं वेदितुम् वनेचरं नियुक्तवान्।

प्रश्न (२) वनेचरः कीदृशम् वेशम् अधारयत्?

उत्तरम्– वनेचरः व्रह्मचरिवेषम् अधारयत्।

प्रश्न (३) वनेचरः वृत्तान्तम् ज्ञात्वा कस्य समीपम् समाययौ?

उत्तरम्– वनेचरः वृतान्तम् ज्ञात्वा युधिष्ठिरस्य समीपं समाययौ।

प्रश्न (४) द्वैतवनात् आगत्य वनेचरः सर्वप्रथमम् किं कृतवान्?

उत्तरम्– द्वैतवनात् आगत्य वनेचरः सर्वप्रथमम् महीभुजम् युधिष्ठिरम् प्रणामं कृतवान्।

प्रश्न (५) काम् निवेदयिष्यतः वनेचरस्य मनः न विव्यथे?

उत्तरम्– सपत्नेन जितां महीं निवेदयिष्यतः वनेचरस्य मनः न विव्यथे।

प्रश्न (६) हितैषिणः किम् प्रवक्तुम् न इच्छन्ति?

उत्तरम्– हितैषिणः मृषा प्रियं प्रवक्तुम् न इच्छन्ति।

प्रश्न (७) कस्य अनुज्ञाम् अधिगम्य वनेचरः वाचम् आददे?

उत्तरम्– भूभृतः युधिष्ठिरस्य अनुज्ञाम् अधिगम्य वनेचरः वाचम् आददे।

प्रश्न (८) कीदृशी वाचम् वनेचरः अवोचत्?

उत्तरम्– सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं वाचम् वनेचरः अवोचत्।

प्रश्न (९) कीदृशः वचः दुर्लभं भवति?

उत्तरम्– हितं मनोहारि वचः दुर्लभं भवति।

प्रश्न (१०) कदा सदा सर्वसम्पदः रतिम् कुर्वते?

उत्तरम्– अनुकूलेषु नृपेषु अमात्येषु च सर्वसम्पदः सदा रतिम् कुर्वते।

प्रश्न (११) विद्विषाम् नयवर्त्म कीदृशानां जानानां कृते दुर्बोधम् भवति?

उत्तरम्– विद्विषाम् नयवर्त्म वनेचरसदृशानां प्राकृतजनानां कृते दुर्बोधम् भवति।

प्रश्न (१२) सुयोधनः दुरोदरछद्मजितां महीं केन जेतुम् समीहते?

उत्तरम्– सुयोधनः दुरोदरछद्मजितां महीं नयेन जेतुं समीहते।

प्रश्न (१३) कया इच्छया सुयोधनः गुणसम्पदा शुभ्रं यशः तनोति?

उत्तरम्— सुयोधनः युधिष्ठिरम् जिगीषया गुणसम्पदा शुभ्रं यशः तनोति।

प्रश्न (१४) दुर्योधनेन नयेन किम् वितन्यते?

उत्तरम्— दुर्योधनेन नयेन पौरुषम् वितन्यते।

प्रश्न (१५) अनार्यसङ्गमापेक्षया कैः सह विरोधोऽपि वरं?

उत्तरम्— अनार्यसङ्गमापेक्षया महात्मभिः समं विरोधोऽपि वरं।

प्रश्न (१६) दुर्योधनः बन्धुताम् लोकस्य कीदृशीम् दर्शयते?

उत्तरम्— दुर्योधनः बन्धुताम् लोकस्य कृताधिपत्यमिव दर्शयते।

प्रश्न (१७) कम् ईयिवान इव दुर्योधनस्य त्रिगणः परस्परं न बाधते?

उत्तरम्— सख्यमीयिवान इव दुर्योधनस्य त्रिगणः परस्परं न बाधते।

प्रश्न (१८) केषाम् अनुरोधेन दुर्योधनस्य सत्क्रिया प्रवर्तते?

उत्तरम्— गुणानुरोधेन दुर्योधनस्य सत्क्रिया प्रवर्तते।

प्रश्न (१९) दुर्योधनः केन धर्मविप्लवम् निहन्ति?

उत्तरम्— दुर्योधनः गुरूपदिष्टेन दण्डेन धर्मविप्लवम् निहन्ति।

प्रश्न (२०) कीदृशी सम्पदः दुर्योधनस्य कृतज्ञतां वदन्ति?

उत्तरम्— अनुजीविसात्कृताः सम्पदः दुर्योधनस्य कृतज्ञतां वदन्ति।

प्रश्न (२१) उपायाः कीदृशी अर्थसम्पदः फलन्ति?

उत्तरम्— उपायाः परिवृंहितायती अर्थसम्पदः फलन्ति।

प्रश्न (२२) कः अजिरं आर्द्रतां नयति?

उत्तरम्— नृपोपायनदन्तिनां मदः अजिरं आर्द्रतां नयति।

प्रश्न (२३) काः दधतः कुरुवः चकासति?

उत्तरम्— सस्यसम्पदः दधतः कुरवः चकासति।

प्रश्न (२४) मेदिनी कानि स्वयं प्रदुग्धे।

उत्तरम्— मेदिनी वसूनि स्वयं प्रदुग्धे।

प्रश्न (२५) कीदृशाः धनुर्भृताः दुर्योधनस्य प्रियाणि समीहितुम् वाञ्छन्ति?

उत्तरम्— महौजसः मानधनाः धनार्चिताः धनुर्भृतः दुर्योधनस्य प्रियाणि समीहितुम् वाञ्छन्ति।

प्रश्न (२६) दुर्योधनस्य ईहितं कैः प्रतीयते?

उत्तरम्— दुर्योधनस्य इहितं महोदयैः हितानुबन्धिभिः फलैः प्रतीयते।

प्रश्न (२७) दुर्योधनस्य शासनं कम् इव कैः च शिरोभिः उह्यते?
उत्तरम्— दुर्योधनस्य शासनम् माल्यमिव नराधिपैः शिरोभिः उह्यते।
प्रश्न (२८) दुर्योधनः हव्येन कम् धिनोति?
उत्तरम्— दुर्योधनः हव्येन हिरण्यरेतसम् धिनोति।
प्रश्न (२९) केन सह विरोधिता दुरन्ता?
उत्तरम— वलवता सह विरोधिता दुरन्ता।
प्रश्न (३०) दुर्योधनः कः इव नताननः व्यथते?
उत्तरम्— दुर्योधनः उरगः इव नताननः व्यथते।
प्रश्न (३१) वनेचरदृशां गुप्तचराणां गिरः कीदृशी भवन्ति?
उत्तरम्— वनेचरदृशां गुप्तचराणां गिरः प्रवृत्तिसाराः भवन्ति।
प्रश्न (३२) कयोः दीपिनी गिरः द्रुपदात्मजा उदाजहार?
उत्तरम्— मन्युव्यवसायदीपिनी गिरः द्रुपदात्मजा उदाजहार।
प्रश्न (३३) प्रमदाजनोदितं अनुशासनम् युधिष्ठिरदृशेषु कीदृशः भवति?
उत्तरम्— प्रमदाजनोदितं अनुशासनम् युधिष्ठिरदृशेषु अधिक्षेपः इव भवति।
प्रश्न (३४) युधिष्ठिरेन आत्महस्तेन मही कीदृशी अपवर्जिता?
उत्तरम्— युधिष्ठिरेन आत्महस्तेन मही स्त्रगिव अपवर्जिता।
प्रश्न (३५) कीदृशाः जनाः पराभवं व्रजन्ति?
उत्तरम्— ये जनाः मायाविषु मायिनः न भवन्ति ते जनाः पराभवं व्रजन्ति।
प्रश्न (३६) युधिष्ठिरात् अन्यः कः आत्मवधूमिव श्रियम् अपहारयेत्?
उत्तरम्— युधिष्ठिरात् अन्यः कोऽपि जनः आत्मवधूमिव श्रियम् न अपहारयेत्।
प्रश्न (३७) उदीरितः मन्युः कथं ज्वलयति?
उत्तरम्— उदीरितः मन्यु शुष्कं शमीतरुम् उच्छिखः अग्निरिव ज्वलयति।
प्रश्न (३८) देहिनः कस्य राज्ञः स्वयमेव वश्याः भवन्ति?
उत्तरम्— देहिनः अवन्ध्यकोपस्य आपदां विहन्तुः राज्ञः स्वयमेव वश्याः भवन्ति।
प्रश्न (३९) अयं वृकोदरः भीमः अधुना कीदृशं अस्ति?
उत्तरम्— अयं वृकोदरः भीमः अधुना पदाति अन्तर्गिरि परिभ्रमन् रेणुरूषितः अस्ति।
प्रश्न (४०) कान् प्रदेशान् विजित्य अर्जुनः धनञ्जयः अभवत्?
उत्तरम्— उत्तरान् कुरून् प्रदेशान् विजित्य अर्जुनः धनञ्जयः अभवत्।

LICENCE NO.-WPP/GR-03/2004 | LICENSED TO POST

पंजीकृत-संख्या—NP/GR—



साइज—१८×२३ इंच [मूल्य रु०

जगज्जननी श्रीर



साइज—१८×२३ इंच [मूल्य रु०

भगवान् विष्णु



साइज—१८×२३ इंच [मूल्य रु० ८

जयश्री

इस अङ्कका मूल्य रु० ३ ए

साइज—२३×३६ इंच [मूल्य रु० ४५ मात्र]

[मूल्य रु० ४५ मात्र]

बाँके बिहारी 531



साइज—१८×२३ इंच [मूल्य रु० ८ मात्र]

लड्डू गोपाल 560



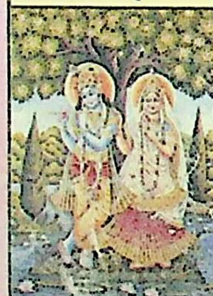
साइज—१८×२३ इंच [मूल्य रु० ८ मात्र]

सुमधुर गोपाल 1351



साइज—१८×२३ इंच [मूल्य रु० ८ मात्र]

श्रीराधा-कृष्ण 1020



साइज—१८×२३ इंच [मूल्य रु० ८ मात्र]

सीताराम 776



साइज—१८×२३ इंच [मूल्य रु० ८ मात्र]

हनुमान्‌जी 491



साइज—१८×२३ इंच [मूल्य रु० ८ मात्र]

नटराज शिव 1290



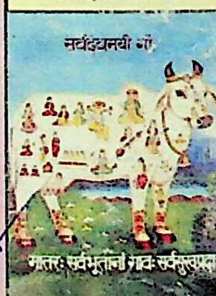
साइज—१८×२३ इंच [मूल्य रु० ८ मात्र]

नवदुर्गा 812



साइज—१८×२३ इंच [मूल्य रु० ८ मात्र]

सर्वदेवमयी गौ 630



साइज—१८×२३ इंच [मूल्य रु० ८ मात्र]

237

१४ चित्रोंके पूरे सेटका (रजिस्टर्ड डाकखर्च एवं विशेष पैकिंग खर्चसहित) मूल्य रु० १२० मात्र

जयश्रीकृष्ण 546

